



वाणी

सरोवर

इ



ग



च



ज



ट



ड



त



न

पुलाई



१९७२

व

मुवन वाणी ट्रस्ट

शनी कटरा - लखनऊ ३.

वाणी श्रवण

प्रत्येक क्षेत्र प्रत्येक संत की बानी ।

संपूर्ण राष्ट्र में घर-घर है पहुँचानी ॥

संपादक—नन्दकुमार अवस्थी

प्रब० सं०—विनयकुमार अवस्थी

वर्ष—३

जुलाई, १९७२

अंक—३

विद्वत्-परिषद्

असमिया—बसन्तकुमार सैकिया सुश्री दीप्ति बरगुहाई	नेपाली—नन्दकुमार आमात्य सुश्री तपेश्वरी देवी आमात्य
अरबी—क्रारी मुहम्मद उस्मान सिद्दीकी, इम्दादुल्लूम, साबरकाठा, गुजरात	पाली—डॉ० हर्षनारायण एम.ए., पीएच्.डी.
ओड़िया—सुरेशचन्द्र नन्द एम. ए. हिन्दी- ओड़िया, रा० भा० रत्न, कटक	पारसी—सुश्री नाजू दारा देबू, 'दिलनवाज़'
अंग्रेजी—डॉ. एम. डी. पटियाल प्रि. उ. भा. धर्ममहा. वि. बरेली	फ़ारसी—स० मस्ज़दहसन रिज़वी, भारत- सरकार-सम्मानित, भू.पू. (फ़ारसी) विभागाध्यक्ष लखनऊ वि० वि०
उर्दू—डॉ. स० असदअली एम.ए., पीएच्. डी. सुश्री माजदा असद एम.ए. पीएच्.डी.	बंगला—प्रबोध मजुमदार
कन्नड़—डॉ. वी. बी. पुन्नन, एम. ए. पीएच्. डी., बंबई	मराठी—प्रा० गजानन साठे, एम.ए., मराठी- अंग्रेजी, हिन्दी, बी.टी., पीएच्. डी. (हिन्दी), बंबई सुश्री कुसुम ताम्बे, एम. ए.
कश्मीरी—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा एम. ए., पीएच्. डी. नाथद्वारा (राज.)	मलयाळम—के. ए. एस. अय्यर, भू. पू. उपकुलपति लख० वि० वि०
गुजराती—डॉ. दीनेश हरिलाल भट्ट, एम.ए. पीएच्.डी., रा० भा० रत्न, बंबई	संस्कृत—बिहारीलाल शास्त्री, काव्यतीर्थ, बरेली
गुरुमुखी—डॉ० अमरसिंह खालसा, डा० आफ़ डिविनिटी (यू. एस. ए.) प्र० संपादक 'सरदार' लखनऊ	सिन्धी—प्रा० कु० पी. टी. आमवाणी, एम. ए. साहित्यरत्न एन. के. केवलरामानी, सा.मं.सि.स.
तमिळु—बी. नटराजन एम. काम.	हिन्दी—रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय 'रमेश' शास्त्री, साहित्यरत्न
तैलुगु—डॉ. भीमसेन 'निर्मल', एम. ए., पीएच्.डी., रीडर, उस्मानिया वि.वि.	

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	विद्वत्परिषद्	...	१
२	विषय-सूची	...	२
३	सम्पादकीय	...	३-५
४	ऋग्वेद १।४।८ के अंश से १।६।१	श्री बिहारीलाल शास्त्री	६-८
५	बाइबिल के नीतिवचन—श्री रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय, नन्दकुमार अवस्थी		३३-४०
६	(फ़ारसी) सिरें अवबर—शा. दाराशिकोह कृत ५१ उपनिषदों की व्याख्या। (क्रमशः) अनुवादक—डॉ. हर्षनारायण एम.ए., पीएच्. डी.		१५३-१६०
७	(मलयाळम) कवि तुञ्चत् एळुत्तच्छन्कृत महाभारत (क्रमशः) सानु. लिप्य.—श्री के.ए.एस.अय्यर, भू.पू. उपकुलपति लख. वि.वि.		१६१-१६८
८	(बंगला) कृत्तिवास रामायण लं.कां.—(क्रमशः) लिप्य.—नन्दकुमार अवस्थी, अनु.—श्री प्रबोध मजुमदार		१६१-१६८
९	(तमिळ्) तिरुक्कुरळ—सानु० लिप्य०—मुश्री गोमती अय्यर, बी. ए. पद्य-भावानुवाद—नन्दकुमार अवस्थी (क्रमशः)		१३७-१४४
१०	(उर्दू) शरीफ़ज़ादः मिर्ज़ा रूस्वा, लिप्य—श्री विनयकुमार अवस्थी (क्रमशः) सम्पादक—डॉ० सय्यद असद अली एम. ए., पीएच्. डी.		१-८
११	(गुरुमुखी) श्री सुखमनी साहब (गुरु अर्जुनदेव की बानी—क्रमशः) अनु०—ख्वाजः दिलमुहम्मद, लाहौर, लिप्य.—नन्दकुमार अवस्थी		१५३-१६०
१२	(अरबी) रियाजुस्सालिहीन (ज़ाद सफ़र)—(क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—नन्दकुमार अवस्थी		१२१-१२८
१३	(ओड़िया) वैदेहीश-विठास—उपेन्द्र भञ्ज कृत—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम.ए., कटक		१३७-१४४
१४	(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत—(क्रमशः) अनु०—डॉ० गजानन साठे, पूना एम.ए., अंग्रेज़ी-मराठी-हिन्दी		९७-१०४
१५	(असमिया) माधव कन्दली कृत रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री प्रबोध मजुमदार		७३-८०
१६	(गुजराती) गिरधर-रामायण—(क्रमशः) सानु. लिप्य०—डॉ. गजानन साठे, पूना, डॉ. दीनेश भट्ट, बंबई		६५-७२
१७	(तैलुगु) रंगनाथ रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—डॉ० भीमसेन 'निर्मल', एम.ए., पी.एच्. डी.		५७-६४
१८	(सिन्धी) सामी अजा सलोक—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—प्रा० कु० पी. आसवाणी एम. ए. सा० र०		५७-६४
१९	(कन्नड़) पम्प रामायण—रच० अभिनव पम्प नागचन्द्र (क्रमशः) सानु. लिप्य. डॉ. वी. बी. पुत्रन एम.ए. पीएच्. डी.		४१-४८
२०	(नेपाली) भानुभक्त रामायण—(क्रमशः) अनु० श्री नन्दकुमार आमात्य		४१-४८
२१	(कश्मीरी) रामावतार चरित—(क्रमशः) सानु. लिप्य. डॉ. शिवनकृष्ण रैणा एम. ए. पीएच्. डी.		४९-५६

सम्पादकीय

पाठक तथा अध्यापक-वृन्द की सेवा में

📖 'वाणी-सरोवर' त्रैमासिक में प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थों की पृष्ठ संख्या को देख कर पाठकों को प्रायः भ्रम हो जाता है। उसका निवारण इस प्रकार है :—

प्रस्तुत जुलाई अंक में मलयाळम का महाभारत पृष्ठ १६१ से १६८ तक है और पिछले अप्रैल के अंक में १५३ से १६० तक था। उसके बाद बंगला का कृत्तिवास रामायण पृष्ठ १६१ से आरंभ होकर १६८ तक जाता है और अप्रैल में १५३ से १६० तक था। अब अगले अंक अक्टूबर में यही महाभारत पृष्ठ १६९ से शुरू होकर १७६ तक जायगा और उसके बाद कृत्तिवास रामायण पु० १६९ से शुरू होकर १७६ तक जायगा। इसी प्रकार इसके अगले अंक जनवरी, ७२ में भी इन ग्रंथों के आगे के पृष्ठ चलेंगे। तात्पर्य यह कि 'वाणी-सरोवर' में चल रहे सभी ग्रन्थों की पृष्ठ-संख्या में एक ग्रंथ का दूसरे ग्रंथ से सम्बन्ध नहीं है।

📖 अध्यापकवृन्द से दूसरा निवेदन है कि इन विभिन्न भाषाई ग्रंथों के अंशों के मूल पाठ को देवनागरी अक्षरों में ध्यान से देखकर हिन्दी और अन्य भाषाओं की शब्दावली में उपलब्ध साम्य, तथा हिन्दी अनुवाद के सहारे, अन्य भारतीय भाषाओं का सामान्य ज्ञान सरलता से प्राप्त करके अपने शिक्षा-केन्द्रों और जनपदों में उन भाषाओं में पैठ की अभिरुचि जाग्रत करें। राष्ट्र के एकीकरण के लिए आज दिन यह परमावश्यक है; और देवनागरी लिप्यन्तरण ही इसका एक मात्र सरल मार्ग है।

सद अपसोस !

वाणीसरोवर-परिवार को, जुलाई अंक के प्रकाशित होने से पूर्व ही, एक असहनीय आघात का सामना हुआ।

हमारी विद्वत्-परिषद् के वरिष्ठ सदस्य और अरबी भाषा के सलाहकार कारी श्री मुहम्मद सिद्दीक साहब ने इस फ़ानी (नश्वर) संसार से विदा होकर हिज्री सं० १३९२ माह जुमादलुखा, ता० २ जुमा, तदनुसार १४ जुलाई, शुक्रवार, १९७२ ई० को उनके लिए उपयुक्त बेहतर दुनिया के लिए प्रस्थान किया।

स्वर्गीय श्री कारी सिद्दीक साहब का जन्म १८ फ़रवरी १९१८ ई० को लखनऊ के चोबदारी मुहल्ला के एक सामान्य परिवार में हुआ था। बाल्यावस्था में ही उनके पिता स्व० श्री अब्दुल ग़नी साहब का देहावसान हो जाने पर उनकी माता और फूफी ने स्वयं श्रम करके उनकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की।

किन्तु 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' । इस बेसहारा स्थिति में भी स्व० श्री सिद्दीक साहब ने अरबी तथा इस्लाम धर्म के विविध शास्त्रों में उल्लेखनीय योग्यता प्राप्त की। सम्पूर्ण कुर्आन उनको हिफ्ज़ (कण्ठाग्र) था। किराँत (कुर्आन-पाठ के विशिष्ट उच्चारण) में निष्णात होकर वे 'क्रारी' उपाधि से ही प्रायः लोकप्रख्यात थे। वे मौलवी, शेखुल्हदीस और कुशल मुनाज़िर (शास्त्रार्थ-कर्ता) थे। इसके अलावा अनेक इल्मी और अदबी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर वे मूर्धन्य उलमाओं (विद्वानों) में अग्रगण्य हुए।

वे अपने दीन के पक्के, निष्ठावान् और साथ ही साथ सर्वथा राष्ट्रवादी थे। देश के बटवारे और मुस्लिम लीग के प्रचण्ड झंझावाती तूफान के समय भी वे अडिग राष्ट्रवादी सैनिक बने रहे। सन् १९२० से ही कांग्रेस के प्रमुख लखनवी नेता स्वर्गीय मौलाना ज़फ़रुलमुल्क के सत्संगियों में क्रारी सिद्दीक साहब का विशिष्ट स्थान था। कई बार वे जेल भी गये।

इस संदर्भ में निवेदन है कि आज से लगभग आठ-नौ साल पहले, उससे पूर्व के सोलह वर्षों में लगातार श्रम में लगे रहने के फलस्वरूप, इन पंक्तियों के लेखक के हाथों, अरबी के विश्वविख्यात धर्मग्रंथ कुर्आन शरीफ़ का हिन्दी अनुवाद सहित देवतागरी लिपि में लिप्यन्तरण तैयार हुआ। मूल अरबी की आयतों का देवनागरी लिपि के माध्यम से शुद्ध पाठ की असंभावना की सफल संभावना सामने आई। मूर्धन्य आलिमों ने इस श्रम को कुतूहल से देखा और अध्ययन के बाद परम सन्तुष्ट और प्रसन्न हुए। अब इस लम्बी अवधि के श्रम को प्रकाशित कर जनता के सामने प्रस्तुत करने से पूर्व यह अनिवार्यतः जरूरी समझा गया कि इस्लाम और अरबी के किसी श्रेष्ठ विद्वान् से इस हिन्दी रूपान्तर की नज़रसानी व सेहत (पुनर्दृष्टि और संशोधन) करा ली जाय। अरबी ज़बान, कुर्आन, इस्लाम-दर्शन और सुन्नत (पैगम्बर स० के पदचिह्नों पर अनुगमन)—इनमें पूरी योग्यता होने के साथ-साथ हिन्दी में भी पैठ होना—ऐसा विद्वान् सहज-मुलभ नहीं था। इसी खोज में लखनऊ के प्रसिद्ध विद्वान् और धर्माचार्य मौलाना मन्ज़ूर नोमानी साहब से साक्षात् हुआ, और उन्हीं के अनुग्रह से स्वर्गीय श्री क्रारी सिद्दीक साहब से मेरा परिचय हुआ।

प्रशंसनीय मौलाना पहले तो इस भारी भरकम काम में हाथ देने के लिए कुछ संकोच में पड़े। काम उत्तरदायित्व का था। किन्तु मेरे श्रम और उपलब्धि को देख कर उन्होंने इस काम में सहायता देने का एक बार निश्चय किया, तो किया। जिस मनोयोग और निस्पृहता से चार वर्ष के मुद्रणकाल तक सहर्ष उन्होंने अपना योगदान किया, वह सराहनीय और आज-कल के युग में दुर्लभ है। भारत क्या अरब तक में प्रख्यात महान् आलिम और धर्माचार्य मौलाना सय्यद अबुल्हसन अली मियाँ साहब ने भी कुर्आन शरीफ़ के हिन्दी रूपान्तर पर पुनर्दृष्टि और संशोधन के लिए स्व० काज़ी साहब की उपयोगिता की अति सराहना की है।

भुवन वाणी ट्रस्ट के 'अरबी' स्तम्भ में चल रही प्रसिद्ध हदीस (पैगम्बर स० का कलाम) 'रियाज़ुस्सालिहीन' के हिन्दी रूपान्तर के प्रूफ-संशोधन में भी स्व० प्रशंसनीय मौलाना बड़ी सहायता कर रहे थे। संतोष की बात है कि उनके

सुयोग्य ज्येष्ठ पुत्र क़ारी मुहम्मद उस्मान सिद्दीक़ साहब ने इस अपूर्ण कार्य के भार को अपने ऊपर लेकर तथा 'वाणीसरोवर' की विद्वत्-परिषद् की सदस्यता एवं अरबी स्तंभ के सलाहकार-पद को स्वीकार कर हमको इस चिन्ता से मुक्त कर दिया है ।

स्व० क़ारी साहब देहावसान तक प्रसिद्ध इस्लामी धर्ममहाविद्यालय दारुल् मुबल्लिगीन लखनऊ के मुद्तमिम (प्रबन्धक) और प्रधान आचार्य रहे । लगभग एक साल से कैंसर जैसी बीमारी में ग्रस्त रह कर बंबई आदि में इलाज कराते रहे । बंबई से लौटते समय ही अकस्मात् स्थिति अधिक बिगड़ जाने पर कानपुर के अस्पताल में भरती हुए और वहीं उनका स्वर्गवास हुआ । स्व० क़ारी साहब के परिवार में उनकी धर्मपत्नी, चार सुपुत्र और तीन आत्मजाएँ हैं ।

क़ारी साहब सही माने में दीनदार, मान्य आलिम, खुशमिजाज और एक नेक इन्सान थे । उनकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा सुबूत यही है कि सीधे-सादे, सामान्य आर्थिक स्थिति के और प्रदर्शन से दूर भागनेवाले इस मध्यम श्रेणी के व्यक्ति के शव के साथ लखनऊ की पुरानी और पिछड़ी बस्ती में अनायास पचास हजार का मानव-समुद्र उमड़ आया था ।

परमपिता परमात्मा से श्री क़ारी मुहम्मद सिद्दीक़ साहब की आत्मा की शान्ति की प्रार्थना करते हुए भुवन वाणी ट्रस्ट तथा वाणीसरोवर के समस्त परिवार की ओर से उनके परिवार के साथ हम समवेदना प्रकट करते हैं ।

नन्दकुमार अवस्थी
—सम्पादक

शरीफ़ज़ादः (आर्यपुत्र)

मिर्ज़ा रुस्वा का शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक उपन्यास शरीफ़ज़ादः 'वाणीसरोवर' के जुलाई १९७२ के अंक में सम्पूर्ण हो गया । इसमें फ़ारसी लहज़ा और इज़ाफ़त को देवनागरी लिपि में प्रस्तुत करने का प्रयोग मात्र किया गया है । निस्सन्देह वह प्रयोग सफल तो नहीं हुआ, किन्तु सफल प्रयोग का स्वरूप ज़रूर निश्चित हो गया है ।

अगले अंक अक्टूबर १९७२ से उर्दू स्तम्भ में आरंभ होनेवाले श्री अब्दुल् हलीम शरर साहब के 'गुज़श्तः लखनऊ' के देवनागरी-लिप्यन्तरण में इज़ाफ़त, इमाला, लहज़ा, एकार तथा ओकार की ह्रस्व व दीर्घ मात्राओं आदि का सही तौर पर प्रयोग हुआ है ।

इसके अनुकरण पर उर्दू साहित्य को हिन्दी में लिखने में बड़ी सरलता होगी ।

को पीकर वा इस राज्य को पाकर, वृत्रों को (मोहों को) नष्ट करने वाले होओ व दुष्टों को दमन करो और लोक-कार्यों में वा युद्धों में समर्थ जन की रक्षा करो ।

भावार्थ—शुद्ध भक्ति भाव से सन्तुष्ट ईश्वर शुद्ध कार्यों में रक्षा करता है । राजा भी राज्य से सन्तुष्ट होकर बुरे लोगों से श्रेष्ठ जन की रक्षा करे । यहाँ वृत्र शब्द बहुवचन में है । यह धारणा कि वृत्र कोई एक व्यक्ति था जिससे इन्द्र का युद्ध हुआ निर्मूल हो जाती है । वृत्र का अर्थ ज्ञान को ढाँपने वाला अर्थात् मोह है । वे मोह निन्यानबे प्रकार के हैं; उन्हें इन्द्र (ईश्वर) की दीप्तिमान् शक्ति नष्ट कर देती है ।

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजया॑मः शतक्रतो ।

धना॑नामिन्द्र सा॒तये॑ । (ऋग् १।४।९)

अर्थ—हे अनेक सामर्थ्यों वाले ईश्वर ! संग्रामों में अर्थात् संसार के संघर्षों में हम आप शक्तिशाली की स्तुति करते हैं । हे इन्द्र ! धनों की, ज्ञान और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए हम आपकी आराधना करते हैं ।

यो रा॒यो३ वनि॑र्महान्त्सु॒पा॒रः सु॒न्व॒तः सखा॑ ।

तस्मा॑ इन्द्रा॒य गाय॑त । (ऋग् १।४।१०)

अर्थ—जो इन्द्र (ईश्वर वा राजा) महान् रक्षक है, उत्तम पालन करने वाला है, तथा यज्ञ करने वाले दानी उपकारी का मित्र है; उसी इन्द्र की स्तुतियों का गान करो ।

भावार्थ—ईश्वर महान् उपकारक है । कर्मशील को सब सुखों से युक्त करता व पालता है । उसका गुण-गानकर मन को शुद्ध करो । राजा भी वही प्रशंसनीय होता है जो कर्मशीलों का मित्र हो ।

सूक्त ५

ऋषि—मधुच्छन्दा । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री ।

आ त्वेता॒ नि पी॑दतेन्द्र॒मभि॑ प्र गा॒यत ।

सखा॑यः स्तोम॑वाहसः । (ऋग् १।५।१)

अर्थ—हे स्तुतियों को धारण करने वालो ! आओ । हे मित्रो ! बैठो और इन्द्र का गान करो ।

पु॒रु॒तमं॑ पु॒रु॒णामीशा॑नं वा॒र्या॑णाम् ।

इन्द्रं॑ सोमे॒ सचा॑ सुते । (ऋग् १।५।२)

अर्थ—हे मित्रो ! जो इन्द्र शक्तिशालियों में भी महान् शक्तिशाली और सब वरणीय पदार्थों का स्वामी है यज्ञ में उसी की स्तुति गाओ ।

स घा' नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्याम्
गमद्वाजेभि रा स नः । (ऋग् १।१।३)

अर्थ—वह इन्द्र (ईश्वर) ही हमारे इष्ट पदार्थ-प्राप्ति में सहायक हो । धन, कल्याण व मोक्ष के लिए सहायक हो । सब योग्यता और शक्तियों को धारण करने वाली बुद्धि में भी सहायक हो । सम्पूर्ण धनों सहित, वैभवों सहित वह हमें प्राप्त हो ।

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः ।
तस्मा इन्द्राय गायत । (ऋग् १।१।४)

अर्थ—जिसके तेज और ऐश्वर्य इन घोड़ों को रथ में (संसार रूपी रथ में) युक्त देखकर नास्तिकता, अज्ञान आदि शत्रु संग्राम में नहीं ठहर पाते, उसी प्रभु का गुणगान करो ।

ध्वन्यर्थ—राजा भी ऐसा ही प्रतापी हो कि युद्ध के लिए सन्नद्ध होते ही शत्रु भाग निकले ।

सुतुपान्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये ।
सोमा सो दध्या शिरः । (ऋग् १।१।५)

अर्थ—भली प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र के उपयोग के लिए दोषरहित, शुद्ध सोम हैं ।

त्वं सुतस्य वीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः ।
इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो । (ऋग् १।१।६)

अर्थ—हे इन्द्र ! तुम सोमपान के लिए तथा बड़े काम उपकार करने के लिए तत्काल बढ़ते हो । हे सुक्रतु ! (सुन्दर ज्ञान युक्त भगवान्) तुम भक्त के भाव जानकर तत्काल सहायता करते हो ।

आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः ।
शं ते सन्तु प्रचेतसे । (ऋग् १।१।७)

अर्थ—हे इन्द्र ! शीघ्रगामी और वाणी द्वारा वर्णित सोम

आपको प्राप्त हों। सर्वज्ञ आपके लिए यह सोम शान्तिकारक हों अर्थात् आप प्रसन्न हों।

त्वां स्तोमा' अवीवृध्न्त्वामुक्था शतक्रतो ।

त्वां वर्धन्तु नो गिरः । (ऋग् १।५।८)

अर्थ—हे शतक्रतु ! (सौ उपकार करने वाले इन्द्र !) तुम्हें हमारे स्तोत्र और वेदपाठ बढ़ाते हैं अर्थात् आपकी प्रशंसा करते हैं। हमारी वाणियाँ आपकी प्रशंसा करें।

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् ।

यस्मिन् विश्वा'नि पौ'स्या । (ऋग् १।५।९)

अर्थ—हे अक्षत रक्षा करने वाले इन्द्र ! हम इस सहस्रों बल वाले ऐसे ऐश्वर्य को प्राप्त करें जिसमें पुरुषार्थ-युक्त सब जन सम्मिलित हों।

मा नो मर्त्ता' अभि द्रुहन् तनूना'मिन्द्र गिर्वणः ।

ईशा'नो यवया वृधम् । (ऋग् १।५।१०)

अर्थ—हे आज्ञा रूप वाणी वाले इन्द्र ! मनुष्य हमारे शरीरों से द्रोह न करें। आप सबके शासक हैं। हिंसा को दूर करें।

भावार्थ—श्रेष्ठ राजा का भी यह कर्तव्य है कि अपने शासन में हत्याएँ न होने दे। सब जन परस्पर मिलकर रहें।

सूक्त ६

ऋषि—मधुच्छन्दा । देवता—१ से ३ इन्द्र । ४, ६, ८, ९, मरुतः ।

५, ७ मरुत और इन्द्र । छन्द—गायत्री ।

युञ्जन्ति' ब्रध्नमरुषं' चरन्तं' परि' तस्थुषः' ।

रोचन्ते' रोचुना दिवि । (ऋग् १।६।१)

अर्थ—सबके नियन्ता भगवान् आदित्य दोषरहित हैं। चारों ओर से हटाकर जो लोग मन को उसी आदित्य (तेजोमय ईश्वर) में युक्त करते हैं वे योगी स्वर्गलोक में चमकते हैं अर्थात् योग द्वारा स्वर्ग मिलता है।

विशेष—जिस प्रकार सब नक्षत्र ब्रध्न (सूर्य) से संबद्ध (आकर्षित) हुए बुलोक में चमकते हैं उसी प्रकार मनुष्यों को ईश्वर में मन लगाना चाहिए।

न ह्यतो धर्मचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम् ।

यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया ॥

—बाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड १९/२२

पिता की सेवा करना तथा उनकी आज्ञा का पालन करना इससे बढ़कर संसार में दूसरा कोई धर्मचरण नहीं है ।

पितुर्हि वचनं कुर्वन् न कश्चिन्नाम हीयते ।

—बाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड २१/३७

पिता की आज्ञा का पालन करनेवाले किसी भी पुरुष की अवनति नहीं होती ।

बुद्धि की महत्ता

५ बुद्धि को प्राप्त कर, समझ को भी प्राप्त कर; उनको भूल न जाना, न मेरी बातों को छोड़ना । ६ बुद्धि को न छोड़, वह तेरी रक्षा करेगी; उससे प्रीति रख, वह तेरा पहरा देगी । ७ बुद्धि श्रेष्ठ है इसलिए उसकी प्राप्ति के लिए यत्न कर; जो कुछ तू प्राप्त करे उसे प्राप्त तो कर परन्तु समझ की प्राप्ति का यत्न घटने न पाए । ८ उसकी बड़ाई कर, वह तुझको बढ़ाएगी; जब तू उससे लिपट जाए, तब वह तेरी महिमा करेगी । ९ वह तेरे सिर पर शोभायमान भूषण बाँधेगी; और तुझे सुन्दर मुकुट देगी । १० हे मेरे पुत्र, मेरी बातें सुनकर ग्रहण कर, तब तू बहुत वर्ष तक जीवित रहेगा । ११ मैंने तुझे बुद्धि का मार्ग बताया है; और सीधार्ई के पथ पर चलाया है । १२ चलने में तुझे रोक-टोक न होगी, और चाहे तू दौड़े, तौभी ठोकर न खाएगा । १३ शिक्षा को पकड़े रह, उसे छोड़ न दे; उसकी रक्षा कर, क्योंकि वही तेरा जीवन है ।

—बाइबिल—नीतिवचन ४/१-१३

तुलना के लिए देखिए 'बाइबिल सार' —पृ० १७ बुद्धि की चेतावनी पर मनुष्य का ध्यान न देना । पृ० १७-१८ बुद्धि के तिरस्कार से हानि । पृ० २४-२५ बुद्धिमत्ता का अभिमान न करना । पृ० २६-३० बुद्धि की महत्ता ।

दुष्टों के लक्षण तथा उनके संग का त्याग

१४ दुष्टों की बाट में पाँव न धरना, और न बुरे लोगों के मार्ग पर चलना । १५ उसे छोड़ दे, उसके पास से भी न चल, उसके निकट से मुड़कर आगे बढ़ जा । १६ क्योंकि दुष्ट लोग यदि बुराई न करें,

तो उनको नींद नहीं आती; और जब तक वे किसी को ठोकर न खिलाएँ, तब तक उन्हें नींद नहीं मिलती। १७ वे तो दुष्टता से कमाई हुई रोटी खाते, और उपद्रव के द्वारा पाया हुआ दाख-मधु पीते हैं।

—बाइबिल-नीतिवचन ४/१४-१७

यथा परोपकारेषु नित्यं जागर्ति सज्जनः।

तथा परापकारेषु जागर्ति सततं खलः॥

—सु० २० भा० दुर्जननिन्दा १०७

जिस प्रकार सज्जन मनुष्य परोपकार (दूसरों की भलाई) के कामों में निरन्तर जागते (तत्परतापूर्वक लगे) रहते हैं उसी प्रकार दुष्ट मनुष्य भी परापकार (दूसरों की बुराई) के कामों में निरन्तर जागते रहते (तत्परतापूर्वक लगे) रहते हैं। अर्थात् सज्जन लोग जब तक किसी की भलाई नहीं कर लेते तब तक उन्हें नींद नहीं आती और दुष्ट लोग जब तक किसी की बुराई नहीं कर लेते तब तक उन्हें नींद नहीं आती।

पिशुनत्वमेव विद्या परदूषणमेव भूषणं श्रेष्ठम्।

परदुःखमेव सौख्यं शिव शिव ते केन वेदसा सृष्टाः॥

—सु० २० भा० दुर्जननिन्दा १५२

चुगलखोरी ही जिनकी विद्या है, परदूषण (दूसरों की बुराई-निन्दा-करना) ही जिनका भूषण है और दूसरों को दुख देना ही जिनका सुख है शिव! शिव!! ऐसे दुष्ट मनुष्यों को किस विधाता ने बनाया है?

न विना परवादेन रमते दुर्जनो जनः।

काकः सर्वरसान् भुक्त्वा विनाऽमेध्यं न तृप्यति॥

—सु० २० भा० दुर्जननिन्दा २

जब तक दूसरों की बुराई न कर लें तब तक दुष्ट लोगों को चैन नहीं मिलती, जैसे कि सब प्रकार के रसों को खाने के बाद भी जब तक अपवित्र मल आदि न खाये तब तक कौए को तृप्ति नहीं मिलती।

तुलना के लिए देखिए 'बाइबिल सार' :—पृ० १३-१६ दुष्टों के लक्षण और उनसे तटस्थता। पृ० २०-२१ बुराई के मार्ग से बचाव।

सज्जनों (धार्मिकों) के आचरण की प्रशंसा

१८ परन्तु धर्मियों की चाल उस चमकती हुई ज्योति के समान है, जिसका प्रकाश दोपहर तक अधिक अधिक बढ़ता रहता है।

—बाइबिल-नीतिवचन ४/१८

आरम्भगुर्वी, क्षयिणी क्रमेण
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्ध-परार्ध-भिन्ना
छायेव मैत्री खल-सज्जनानाम् ॥

—भर्तृहरिनीतिशतक श्लोक ६०

दुष्टों की मित्रता दिन के पूर्वार्ध की छाया के समान होती है जो पहले तो बड़ी होती है फिर धीरे-धीरे घटने लगती है, परन्तु सज्जनों की मित्रता दिन के उत्तरार्ध की छाया के समान होती है जो पहले कम होती है और फिर धीरे-धीरे बढ़ने लगती है ।

दुष्टों के मार्ग की निन्दा

१९ दुष्टों का मार्ग घोर अन्धकारमय है; वे नहीं जानते कि वे किससे ठोकर खाते हैं ।

—बाइबिल—नीतिवचन ४/१९

अन्धतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।

—शुक्लयजुर्वेदसंहिता ४०

जो अविद्या की उपासना करते हैं वे घोर अन्धकार (-मयमार्ग) में प्रवेश करते हैं—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः

स्वयंधीराः पण्डितमन्यमानाः ।

जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा

अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥

—मुण्डक उपनिषद् १/२/८

अविद्या से ग्रस्त मूर्ख लोग अपने को बुद्धिमान् तथा विद्वान् मानकर बार-बार इसी प्रकार ठोकरें खाते हुए भटकते रहते हैं जैसे अन्धे के पीछे चलनेवाले अन्धे लोग ।

सदुपदेश-पालन का अनुरोध

२० हे मेरे पुत्र मेरे वचन ध्यान करके सुन, और अपना कान मेरी बातों पर लगा । २१ इनको अपनी आँखों की ओट न होने दे; वरन् अपने मन में धारण कर । २२ क्योंकि जिनको वे प्राप्त होती हैं, वे उनके जीवित रहने का, और उनके सारे शरीर के चंगे रहने का कारण होती हैं ।

—बाइबिल—नीतिवचन ४/२०-२२

तुलना के लिए देखिए 'बाइबिल सार' :— पृ० ११/१/१-६; पृ० २२/३/१-२

मन की रक्षा (मनोनिग्रह) का उपदेश

२३ सबसे अधिक अपने मन की रक्षा कर; क्योंकि जीवन का मूल स्रोत वही है।

—बाइबिल—नीतिवचन ४/२३

शुक्ल-यजुर्वेद-संहिता में मन के महत्त्व का छः मंत्रों में विस्तारपूर्वक वर्णन है, जिनमें दो मंत्र दिये जा रहे हैं :—

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजामु ।

यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३ ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्

परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।

येन यज्ञस्तायते सप्तहोता

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ४ ॥

—शुक्लयजुर्वेदसंहिता ३४/३-४

जो प्रज्ञाओं के अन्तःकरण में प्रज्ञान (बुद्धि), चेत (चेतना-चित्त), धृति (धैर्य, धारणा), और अमृत (अक्षय) ज्योति (प्रकाश, ज्ञान का साधन) के रूप में स्थित है, तथा जिसके बिना कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता ऐसा मेरा मन शुभ संकल्पों वाला बने ॥ ३ ॥

जिस अमृत (अक्षय, स्थिर धर्म वाले मन) से भूतकालीन वर्तमानकालीन तथा भविष्यत्कालीन सारा ज्ञान भलीभाँति प्राप्त कर लिया जाता है और जिसकी सहायता से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (कान, त्वचा, आँख, जिह्वा तथा नाक) मन तथा बुद्धि रूपी सप्तहोता (सात होताओं—हवन करनेवालों से युक्त) यज्ञ का विस्तार किया जाता है ऐसा मेरा मन शुभ संकल्पों वाला बने ॥ ४ ॥

नीतिग्रन्थों में भी मन को बन्धन तथा मोक्ष सबका कारण बतलाया है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।

बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः ॥

मन ही मनुष्यों के बन्धन तथा मोक्ष का कारण है। विषयों में आसक्त मन बन्धन का, तथा विषयों से विरक्त मन मुक्ति का कारण है।

अप्रिय और छलभरी वाणी मत बोलो
२४ टेढ़ी बात अपने मुँह से मत बोल, और चालबाजी की बातें कहना
तुझ से दूर रहे ।

—बाइबिल—नीतिवचन ४/२४

सत्य ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्
न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।

प्रियं च नानृतं ब्रूयात्
एष धर्मः सनातनः ॥

—मनुस्मृति ४/१३८

प्रिय लगनेवाला सत्य बोलना चाहिए, अप्रिय लगनेवाला सत्य न बोलना चाहिए, और प्रिय लगनेवाला असत्य (झूठ) भी न बोलना चाहिए, यही सनातन (पुराना) धर्म है ।

अनुद्वेगकरं वाक्यं
सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यासनं चैव
वाङ्मयं तप उच्यते ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता १७/१५

जो किसी के मन में उद्वेग (झुंझलाहट, क्रोध आदि) न उत्पन्न करे, जो प्रिय लगनेवाली हो, जो सत्य हो, जो हितकारी हो, ऐसी वाणी तथा वेदशास्त्रादिकों के अध्ययन आदि को वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है ।

देखभाल कर लक्ष्य-पथ पर चलना चाहिए

२५ तेरी आँखें सामने ही की ओर लगी रहें, और तेरी पलकें आगे की ओर खुली रहें । २६ अपने पाँव धरने के लिये मार्ग को समथर कर, और तेरे सब मार्ग ठीक रहें । २७ न तो दाहिनी ओर मुड़ना, और न बाई ओर; अपने पाँव को बुराई के मार्ग पर चलने से हटा ले ।

—बाइबिल—नीतिवचन ४/२५-२७

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादम्

वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।

सत्यपूतां वदेद् वाचं

मनः पूतं समाचरेत् ॥

—मनुस्मृति ६/४६

आँखों से देख-भालकर आगे पैर बढ़ाना चाहिए, कपड़े से छानकर जल पीना चाहिए, सत्य के द्वारा पवित्र वाणी बोलना चाहिए, तथा जिससे मन पवित्र बने ऐसा कर्म करना चाहिए ।

कर्तव्यमेव कर्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ।

अकर्तव्यं न कर्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥

—सु० २० भा० सामान्यनीति ३१७

चाहे प्राण गले में ही क्यों न आ जायें, कर्तव्य-मार्ग पर ही चलना चाहिए इसी प्रकार चाहे प्राण गले में ही क्यों न आ जायें अकर्तव्य मार्ग पर नहीं चलना चाहिए ।

ज्ञानोपदेश के लाभ, परस्त्री-संग-निन्दा

१ हे मेरे पुत्र, मेरी बुद्धि की बातों पर ध्यान दे, मेरी समझ की ओर कान लगा; २ जिससे तेरा विवेक सुरक्षित बना रहे, और तू ज्ञान के वचनों को थामे रहे । ३ क्योंकि पराई स्त्री के ओठों से मधु टपकता है, और उसकी बातें तेल से भी अधिक चिकनी होती हैं; ४ परन्तु इसका परिणाम नागदौना सा कड़ुवा और दोधारी तलवार सा पैना होता है । ५ उसके पाँव मृत्यु की ओर बढ़ते हैं; और उसके पग अधोलोक तक पहुँचते हैं । ६ इसलिए उसे जीवन का समथर पथ नहीं मिल पाता; उसके चालचलन में चंचलता है, परन्तु उसे वह आप नहीं जानती । ७ इसलिए अब हे मेरे पुत्रो, मेरी सुनो, और मेरी बातों से मुँह न मोड़ो । ८ ऐसी स्त्री से दूर ही रह, और उसकी डेवड़ी के पास भी न जाना;

—बाइबिल-नीतिवचन ५/१-८

तुलना करो—‘बाइबिल सार’ पृ० ११/१/१-६ की टिप्पणी ।

तुलना करो—‘बाइबिल सार’ पृ० २१/२/१६-१९ की टिप्पणी ।

बाइबिल के नीतिवचन के समान ही भारतीय साहित्य में भी स्त्रियों के स्वभाव के विषय में इसी प्रकार की अन्य उक्तियाँ भी प्राप्त हैं—

आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां ।

दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ।

दुर्ग्रह्यं यन्महद्भिर्नरवरवृषभैः सर्वमायाकरण्डम् ।

स्त्रीयन्त्रं केन लोके विषममृतमयं धर्मनाशाय सृष्टम् ।

—सु० २० भा० स्त्रीस्वभाव-निन्दा ८३

स्त्रियाँ संशयों का आवर्त (भँवर) हैं, अविनय (विनय-हीनता) का भवन हैं, दुःसाहसों का नगर हैं, दोषों की पिटारी हैं, सैकड़ों कपटों से भरा हुआ अविश्वासों का पात्र हैं, बड़े-बड़े लोगों से भी अग्राह्य सभी प्रकार की मायाओं की पिटारी हैं। इस प्रकार भीतर विष और ऊपर अमृत भरे हुए स्त्रीरूपी यन्त्र को धर्म के नाश करने के लिए किसने बनाया है।

परस्त्री-संग का परिणाम

९ कहीं ऐसा न हो कि तू अपना यश औरों के हाथ, और अपना जीवन क्रूर जन के वश में कर दे; १० या पराए तेरी कमाई से अपना पेट भरें, और परदेशी मनुष्य तेरे परिश्रम का फल अपने घर में रखें; ११ और तू अपने अन्तिम समय में जब कि तेरा शरीर क्षीण हो जाए तब यह कहकर हाथ मारने लगे, कि १२ मैंने शिक्षा से कैसा बैर किया, और डाँटनेवाले का कैसा तिरस्कार किया ! १३ मैंने अपने गुरुओं की बातें न मानी और अपने सिखानेवालों की ओर ध्यान न लगाया। १४ मैं सभा और मण्डली के बीच में प्रायः सब बुराइयों में जा पड़ा।

—बाइबिल—नीतिवचन ५/९-१४

वेश्यासो मदन-ज्वाला

रूपेन्धन - समन्विता।

कामिभिर्यत्न हूयन्ते

यौवनानि धनानि च ॥

—सु० २० भा० वेश्यागर्हणम् १

वेश्या वासना की धधकती हुई ज्वाला है, रूप ही उस ज्वाला का ईंधन है, जिससे वह निरन्तर प्रज्वलित होती रहती है। इस धधकती हुई ज्वाला में वासनालोलुप कामी लोग अपने यौवन और धन को भस्म करते रहते हैं।

अपनी स्त्री से ही प्रेम करने का उपदेश

१५ तू अपने ही कुण्ड से पानी, और अपने ही कूँ के सोते का जल पिया करना। १६ क्या तेरे सोतों का पानी सड़क में, और तेरे जल की धारा चौकों में बह जाने पाए ? १७ यह केवल तेरे ही लिए रहे, और तेरे संग औरों के लिए न हो। १८ तेरा सोता धन्य रहे; और अपनी जवानी की पत्नी के साथ आनन्दित रह, १९ प्रिय हरिणी वा सुन्दर सांभरनी के समान उसके स्तन सर्वदा तुझे संतुष्ट रखें, और उसी

का प्रेम नित्य तुझे आकर्षित करता रहे । २० हे मेरे पुत्र, तू अपरिचित स्त्री पर क्यों मोहित हो, और पराई को क्यों छाती से लगाए ?

—बाइबिल-नीतिवचन ५/१५-२०

सज्जनों के लक्षणों का वर्णन करते हुए अपनी भार्या से ही प्रेम का निर्देश है :—

वाञ्छा सज्जन-सङ्गमे, परगुणे प्रीतिर्गुरो नम्रता,
विद्यायां व्यसनं, स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद् भयम् ।

भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले,

येष्वेते निवसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥

—भर्तृहरिनीतिशतक ६२

सज्जनों से मिलने की अभिलाषा, दूसरों के गुणों में प्रीति, गुरुजनों के आगे नम्रता, विद्या का व्यसन, अपनी स्त्री से ही प्रेम करना, लोकनिन्दा का भय, कल्याणरूप परमात्मा की भक्ति, इन्द्रियदमन की सामर्थ्य और दुर्जनों की संगति का पूर्ण परित्याग, ये सद्गुण जिन सज्जन पुरुषों में विद्यमान (मौजूद) हैं उनको नमस्कार है ।

ईश्वर मनुष्य के सभी कर्मों को जानता है ।

२१ क्योंकि मनुष्य के मार्ग यहोवा की दृष्टि से छिपे नहीं हैं, और वह उसके सब मार्गों पर ध्यान करता है ।

—बाइबिल-नीतिवचन ५/२१

आदित्यचन्द्रावनिलोज्ज्वलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।

अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥

—सु० रा० भा० सामान्यनीति ५५६

सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय, यमराज, दिन, रात, प्रभात, संध्या तथा धर्म इन १४ साधनों के द्वारा परमेश्वर सभी मनुष्यों के शुभ और अशुभ कर्मों को देखता रहता है ।

पापी के पापकर्म ही उसके बन्धन तथा मृत्यु का कारण हैं

२२ दुष्ट अपने ही अधर्म के कर्मों से फँसेगा, और अपने ही पाप के बन्धनों में बँधा रहेगा । २३ वह शिक्षा प्राप्त किए बिना मर जाएगा, और अपनी ही मूर्खता के कारण भटकता रहेगा ।

—बाइबिल-नीतिवचन ५/२२-२३

अनु०—[यह आत्मा] न नेत्र से ग्रहण किया जाता है, न वाणी से, न अन्य इन्द्रियों से, और न तप अथवा कर्म से ही। ज्ञान के प्रसाद से [पुरुष] विशुद्धचित्त हो जाता है, और तभी वह ध्यानावस्थित होकर उस निष्कल [आत्मतत्त्व] का साक्षात्कार करता है। (८)

सि० अ०—उसे चक्षु से नहीं देखा जा सकता, उस का गुणगान वाणी से नहीं किया जा सकता, उसे किसी भी इन्द्रिय से नहीं प्राप्त किया जा सकता, उसे तप और कर्म से नहीं प्राप्त किया जा सकता; उसे विशुद्ध ज्ञान और कैवल्य से प्राप्त किया जा सकता है। जिन के मन ज्ञान और ब्रह्मनिष्ठा से शुद्ध और प्रकाशयुक्त हो गये हैं, ऐसे ही मन से जब वे उस सत्ता का ध्यान करते हैं जो कलाओं से रहित है और द्वैतभाव से मुक्त, तभी वे उसे देखते हैं। [८]

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो,

यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश।

प्राणैश् चित्तं सर्वमोतं प्रजानां

यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥९॥

अनु०—यह सूक्ष्म आत्मा, जिस [शरीर] में प्राण पाँच प्रकार से प्रविष्ट है [उस शरीर के भीतर] विज्ञान द्वारा जानने योग्य है। प्राण द्वारा प्रजाओं का समस्त चित्त व्याप्त है जिस के शुद्ध हो जाने पर यह आत्मा प्रकाशित हो जाता है। (९)

सि० अ०—उस सूक्ष्म आत्मा को शुद्ध मन के अतिरिक्त अन्य किसी साधन से जाना नहीं जा सकता। उस शुद्ध मन में जो कि सूक्ष्म शरीर कहलाता है, पाँच प्राण—प्राण, अपान, व्यान, उदान, और समान—होते हैं और सभी इन्द्रियाँ होती हैं। ये सब उस मन के धागे में गुथे हुए हैं। जब वह मन शुद्ध हो जाता है, तो आत्मा हो जाता है और अपने स्वामी को प्रकट कर देता है। [९]

यं यं लोकं मनसा संविभाति

विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश् च कामान्

तं तं लोकं जयते तांश् च कामांस्,

तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः ॥१०॥

अनु०—विशुद्धचित्त [आत्मवेत्ता] मन से जिस-जिस लोक की भावना करता है और जिन-जिन भोगों की कामना करता है वह उसी-उसी लोक और उन्हीं-उन्हीं भोगों को जीतता है। इसलिए ऐश्वर्य की कामना रखने वाला [पुरुष] आत्मज्ञानी की पूजा करे। (१०)

सि० अ०—इस शुद्ध मन की विशेषता है कि वह जिस लोक की इच्छा करता है और जिस वस्तु की कामना करता है उसे प्राप्त कर लेता है। अतः यदि वह आत्मा की इच्छा करे तो आत्मा को क्यों न प्राप्त करे, जब कि सभी इच्छाएँ आत्मा में निहित हैं? जो कोई सांसारिक ऐश्वर्य और पारलौकिक कल्याण चाहे वह ज्ञानी और यती की इसी प्रकार उपासना करे। [१०]

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

द्वितीयः खण्डः

स वेदैतत् परमं ब्रह्म धाम
यत् विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् ।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्
ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ॥१॥

अनु०—वह (आत्मवेत्ता) इस परम ब्रह्मधाम को जानता है जिस में यह समस्त जगत् निहित हो कर उज्ज्वल रूप से भासमान हो रहा है। जो निष्कामभाव से उस पुरुष की उपासना करते हैं, वे [शरीर के बीजभूत] इस वीर्य का अतिक्रमण कर जाते हैं। (१)

सि० अ०—जो कोई इस मन को ब्रह्म का धाम और इस धाम को साक्षात् ब्रह्म जानता है, वह यह भी जानता है कि सारी इच्छाएँ, कामनाएँ, और अभिलाषाएँ इसी धाम में हैं, समस्त लोक इसी धाम में हैं, उसी के प्रकाश से समस्त लोक दृश्यमान है, और उसी के प्रकाश से समस्त लोक पवित्र दिखायी देते हैं। जो कोई इस प्रकार उस इच्छा-रहित और कामना-रहित आत्मा की उपासना करता है वह शरीर के बन्धन से मुक्त हो जाता है। [१]

कामान् यः कामयते मन्यमानः

स कामभिर् जायते तत्र तत्र ।

पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस् त्वि-

हैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥२॥

अनु०—जो [भोगों का] चिन्तन करने वाला पुरुष भोगों की कामना करता है वह उन कामनाओं द्वारा वहाँ-वहाँ (उन की प्राप्ति के स्थानों में) उत्पन्न होता रहता है। परन्तु जिस की कामनाएँ पूर्ण हो गयी हैं उस कृतकृत्य पुरुष की तो सभी कामनाएँ यहीं विलीन हो जाती हैं। (२)

सि० अ०—जो कोई इच्छा और कामना के लिए उपासना करता है वह इच्छा और कामना प्राप्त करता है और जिस ने भी इच्छा-रहित हो कर और निष्काम भाव से उपासना की है उस में सभी इच्छाएँ लीन हो जाती हैं, क्योंकि उसे इच्छा आत्मा की है, उसे कोई अन्य इच्छा नहीं रह गयी है। [२]

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो,

न मेधया, न बहुना श्रुतेन ।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्,

तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥३॥^१

अनु०—यह आत्मा न तो [शास्त्र के] प्रवचन से प्राप्त होने योग्य है, न मेधा (धारणाशक्ति) से, [और न] अधिक पाण्डित्य से। यह जिस का वरण करता है उसी द्वारा इस की प्राप्ति हो सकती है। उस के प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को व्यक्त कर देता है। (३)

सि० अ०—उस आत्मा को ब्रह्मविद्या के बिना अधिक प्रवचन से प्राप्त नहीं किया जा सकता, ब्रह्मज्ञान के अतिरिक्त किसी अन्य ज्ञान से प्राप्त नहीं किया जा सकता, ब्रह्म के श्रवण के अतिरिक्त किसी अन्य के श्रवण से उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। वह जिसे चाहता है अपने स्वरूप को उस पर प्रकट कर देता है। जिसे

शक्ति, ब्रह्मनिष्ठा, और ज्ञान नहीं है, जिस ने अपना मन अन्य वस्तुओं में लगा रखा है, और जो साधना और उपासना की विधि नहीं जानता वह आत्मा को नहीं प्राप्त करता । [३]

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो,

न च प्रमादात्, तपसो वाऽप्यलिङ्गात् ।

एतैरुपायैर् यतते यस् तु विद्वांस्

तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥४॥

अनु०—यह आत्मा बलहीन पुरुष को प्राप्त नहीं हो सकता, और न प्रमाद से अथवा लिङ्ग (संन्यास) रहित तपस्या से । परन्तु जो विद्वान् इन उपायों से प्रयत्न करता है उस का यह आत्मा ब्रह्मधाम में प्रविष्ट हो जाता है । (४)

सि० अ०—जिसे ब्रह्म की शक्ति और ज्ञान है वह उस धाम में जो ब्रह्म-धाम है प्रवेश करता है और साक्षात् वही हो जाता है । [४]

संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः

कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः ।

ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा

युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति ॥५॥

अनु०—इसे प्राप्त कर ऋषिगण ज्ञानतृप्त, कृतकृत्य, विरक्त, और प्रशान्त हो जाते हैं । वे धीर पुरुष उस सर्वगत [ब्रह्म] को सब ओर प्राप्त कर समाहितचित्त हो सर्वरूप ब्रह्म में ही प्रवेश कर जाते हैं । (५)

सि० अ०—सभी ज्ञानी और यती उसे प्राप्त कर के ब्रह्मनिष्ठा और ज्ञान से तृप्त हो जाते हैं और जानने और समझने लगते हैं कि हमारे लिए कुछ भी करणीय शेष नहीं है जिसे हम करें । इस कारण वे विरक्त हो जाते हैं, शान्त हो जाते हैं, वे ज्ञानी उस सर्वव्यापी सत्ता को सब में पा कर सर्वरूप हो जाते हैं । [५]

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः

संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः ।

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले

परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥६॥

अनु०—जिन्होंने ने वेदान्त के विज्ञान से अर्थ का अच्छी तरह निश्चय कर लिया है वे संन्यासयोग से यत्न करने वाले शुद्धचित्त पुरुष ब्रह्मलोक में देहत्याग करते समय परम अमरभाव को प्राप्त हो सब ओर से मुक्त हो जाते हैं । (६)

सि० अ०—उन्होंने ने उपनिषदों और ब्रह्मवाक्यों से निर्णय कर लिया है और समझ लिया है कि आत्मा सत् है और अनात्मा का ज्ञान मिथ्या है । जिन्होंने ने भिक्षु-वृत्ति, संन्यास, त्याग, और ब्रह्मचर्य धारण कर लिया है उन्होंने ने तप से अपने को शुद्ध कर लिया है । वे उपासना में रत हैं । जब वे इस लोक से उस ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं तो उस लोक में ब्रह्मा के साथ रह कर जब ब्रह्मा मुक्त हो जाता है तो वे भी मुक्त हो जाते हैं । [६]

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा,

देवाश् च सर्वे प्रतिदेवतासु ।

कर्माणि विज्ञानमयश् च आत्मा

परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ॥७॥

अनु०—पन्द्रह कलाएँ (देहारम्भक तत्त्व) अपने आश्रयों में स्थित हो जाती हैं, समस्त देवगण (इन्द्रियाँ) अपने प्रतिदेवता (आदित्यादि) में लीन हो जाते हैं । कर्म और विज्ञानमय आत्मा सब परम अव्यय [पुरुष] में एकीभाव को प्राप्त हो जाते हैं । (७)

सि० अ०—ज्ञानी और ब्रह्मवित् जब शरीर छोड़ता है और उस की सभी इन्द्रियाँ और कलाएँ अपने देवताओं को प्राप्त हो जाती हैं तो वह शुभ और अशुभ कर्म का फल नहीं जो स्वर्ग या नरक प्राप्त कराये, बल्कि उस का जीवात्मा अव्यय परमात्मा के साथ एकीभूत हो जाता है । [७]

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे-

ऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय,

तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः

परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥८॥

अनु०—जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ अपने नाम-रूप को त्याग कर समुद्र में अस्त हो जाती हैं, उसी प्रकार विद्वान् नाम-रूप से मुक्त हो कर परात्पर दिव्य पुरुष को प्राप्त हो जाता है । (८)

सि० अ०—जिस प्रकार नदियाँ यात्रा कर के और नाम-रूप त्याग कर महासागर के साथ एकीभूत हो जाती हैं उसी प्रकार ज्ञानी और ब्रह्मवित् अपने नाम-रूप को त्याग कर परात्पर पुरुष को प्राप्त कर लेते हैं । वह परात्पर पुरुष अपने ही प्रकाश से प्रकाशित है, सर्वगत है, और सर्वव्यापक है । [८]

स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति,^१ नास्या-
ब्रह्मवित् कुले भवति; तरति शोकं, तरति पाप्मानं, गुहाग्रन्थिभ्यो
विमुक्तोऽमृतो भवति ॥९॥

अनु०—जो कोई उस परब्रह्म को जान लेता है वह ब्रह्म ही हो जाता है; उस के कुल में कोई अब्रह्मवित् नहीं होता, वह शोक को तर जाता है, पाप को पार कर लेता है, हृदयग्रन्थियों से विमुक्त हो कर अमर हो जाता है । (९)

सि० अ०—जो कोई उस ब्रह्म को जान लेता है ब्रह्म हो जाता है । अर्थात् जो कोई ईश्वर को जान लेता है ईश्वर हो जाता है । उसके कुल में कोई ज्ञान और अवगति से रहित नहीं होता । वह शोक, दुःख, और कामना के समुद्र और कर्मों के समुद्र को तर कर और अपने हृदय की ग्रन्थियों से मुक्त हो कर अमरत्व प्राप्त कर लेता है । [९]

तदेतद् ऋचाऽभ्युक्तम्—

क्रियावन्तः, श्रोत्रिया, ब्रह्मनिष्ठाः,

स्वयं जुह्वत एकर्षि^२ श्रद्धयन्तः—

तेषामेवैषां ब्रह्मविद्यां वदेत,

शिरोव्रतं विधिवद् यैस् तु चीर्णम् ॥१०॥

१ 'सिरें अक्बर' के लातीनी अनुवाद के कर्ता आंक्वेटिल डुपेरान ने इस वाक्य को उपनिषदों का सार बतलाया है, जो सर्वथा समीचीन है ।

२ तुलनीय प्रश्नोपनिषद् २.११

अनु०—यही [बात] ऋचा ने भी कही है—जो [अधिकारी] क्रिया-वान्, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, और स्वयं श्रद्धापूर्वक एकषि [नामक अग्नि] में हवन करने वाले हैं तथा जिन्होंने विधिपूर्वक शिरोव्रत का अनुष्ठान किया है उन्हीं से यह ब्रह्मविद्या कहनी चाहिए । (१०)

सि० अ०—यह विद्या उन्हीं से कहनी चाहिए, उन्हीं को समझानी चाहिए, जिन्होंने वेद में प्रतिपादित कर्मों का अनुष्ठान किया है, जो वेदार्थ को समझते हैं, और ब्रह्मनिष्ठ हैं । किसी अन्य से [यह विद्या] नहीं कहनी चाहिए । [१०]

तदेतत् सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच । नैतदचीर्णव्रतोऽधीते ।
नमः परमऋषिभ्यो, नमः परमऋषिभ्यः ॥११॥

अनु०—उस इस सत्य का पूर्व काल में अङ्गिरा ऋषि ने उपदेश किया था । जिस ने शिरोव्रत का अनुष्ठान नहीं किया वह इस का अध्ययन नहीं कर सकता । परमर्षियों को नमस्कार ! परमर्षियों को नमस्कार ! ! (११)

सि० अ०—ऋषीश्वर अंगिरा ने अपने शिष्य से ब्रह्म-विद्या को इसी प्रकार कहा और समझाया, और कहा कि जिसे वेद में श्रद्धा नहीं उस से यह विद्या नहीं कहनी चाहिए । [११]

ज्ञानियों को नमस्कार ! ज्ञानियों को नमस्कार ! अर्थात् ब्रह्मवेत्ताओं का शुभ हो ! ब्रह्मवेत्ताओं का शुभ हो !

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

समाप्त हुई अथर्ववेदीया मुण्डकोपनिषद्

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा ! भद्रं पश्येमाक्षभिर् यजत्राः,
स्थिरैरङ्गैस् तुष्टुवांसस् तनूभिर् व्यशेम देवहितं यदायुः ।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः,
स्वस्ति नस् ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः, स्वस्ति नो बृहस्पतिर् दधातु ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

॥ इति मुण्डकोपनिषत् समाप्ता ॥

ॐ

माण्डूक्योपनिषद्

(अथर्ववेदीया)

शान्तिपाठः

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा ! भद्रं पश्येमाक्षभिर् यजत्राः,
स्थिरैरङ्गैस् तुष्टुवांसस् तनूभिर् व्यशेम देवहितं यदायुः ।

(ऋग्वेद १. ८१. ८)

अनु०—हे देवगण ! हम कानों से कल्याणी वाणी सुनें, यज्ञकर्म में समर्थ हो कर नेत्रों से शुभ दर्शन करें, स्थिर अंग और शरीरों से स्तुति करने वाले हम लोग देवताओं के लिए हितकर आयु का भोग करें ।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः,
स्वस्ति नस् ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः, स्वस्ति नो बृहस्पतिर् दधातु ।

(ऋग्वेद १. ८१. ६)

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

अनु०—महान् कीर्तिवाला इन्द्र हमारा कल्याण करे, सर्वज्ञ (अथवा सर्वैश्वर्यवान्) पूषा हमारा कल्याण करे, जो अरिष्टों (आपत्तिओं) के लिए चक्र के समान [घातक] है वह गरुड़ हमारा कल्याण करे, बृहस्पति हमारा कल्याण करे । त्रिविध ताप की शान्ति हो ।

ओमित्येतदक्षरम् । इदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम् । भूतं, भवद्, भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव । यच् चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥१॥

अनु०—‘ओम्’ यह अक्षर है । यह सब उस की व्याख्या है । जो कुछ भूत, भविष्यत्, और वर्तमान है सब ओंकार ही है । अन्य जो त्रिकालातीत है वह भी ओंकार ही है । (१)

सारतचेरुं गिरिकळ् कुलुङ्ङुन्तु ।
 घोरनां सिंहिकासूनु मरुकुन्तु । १८७
 स्वर्गनिवासिकळ् कण्णु कलङ्ङुन्तु
 दिग्गजेन्द्रन्मारु भयेन नटुङ्ङुन्तु । १८८
 सन्तापमुळ्ककाण्टनन्तनुं चिन्तिच्चु
 सन्ततं माधवन्तत्रं वणङ्ङुन्तु । १८९
 शङ्करन् भूषणनाशं वरुमन्तु
 शङ्किच्चुळन्तु भवानियं नोककुन्तु । १९०
 पारेळुरण्टुममन्दं मुळङ्ङुन्तु
 वारिजसंभवनुं चैवि पाक्कुन्तु । १९१
 नारायणनुमुरक्कमुणरुन्तु
 नारायण हरे विस्मयमैत्रयुम् । १९२
 सर्पसत्रप्रयोगप्रभावं कण्टा-
 रङ्गुतं पूण्टु जगद्वासिकळ्ळलाम् । १९३
 अन्तमिल्लातारु भोगिकळ् तीयिल् वी-
 णन्तमाय्वन्तु तन्ने परयावितुम् । १९४
 वेंनुपांशाञ्जुटन् तलक्षणं तक्षकन्
 बन्धुवामिन्द्रनंच्चेन्तु कण्टीटिनान् १९५
 पेटियाक्केतुमिविटैप्पारुक्क नी
 चूटिविटेक्कु वरिकयुमिल्लेतुम् । १९६

नाद निकाल रहे हैं । बड़े-बड़े पर्वत हिल रहे हैं । घोर सिंहिका-
 पुत्र (राहु) परिभ्रम (धोखे) में आ गया है । १७७-१८७ स्वर्ग के
 निवासियों की आँखें दुःख रही हैं और सब दिग्गज भय से काँप रहे हैं ।
 दुःखित होकर अनन्त (शेष) सदैव माधव का ध्यान कर रहा है और
 वन्दना कर रहा है । शङ्कर चिन्तित हुए कि अपने भूषण का नाश
 होगा और भवानी की ओर देखने लगे । चौदहों लोक अत्यन्त कोलाहल-
 पूर्ण हो रहे हैं । और वारिजसंभव (ब्रह्मा) ध्यान से सुन रहे हैं ।
 और नारायण जी जाग रहे हैं । हे नारायण ! हे हरे ! कितना
 आश्चर्य है ! सर्पसत्र के अनुष्ठान का प्रभाव देखकर जगत् के सभी
 निवासी आश्चर्यचकित हुए । असंख्य सर्प आग में गिरकर समाप्त
 हुए, इतना ही कहना है । उस समय ताप को असह्य पाकर
 तक्षक अपने मित्र इन्द्र को देखने गया । १८८-१९५ (इन्द्र ने कहा—)

नीचसर्पङ्ङळौटुङ्ङुमाँट्टावोळं
 नीचरल्लात निङ्ङळ्विकटरिल्लेतुम् । १९७
 तक्षकनुं सहस्राक्षनक्कण्टाशु-
 शुक्षिणिभीति कूटातं मरुविनान् । १९८
 नासिकान्ते पुक्कु धूमाकुलनाय
 वासुकि सोदरियोटु चाल्लीटिनान् । १९९
 मृत्युवटुत्त जनत्तिन्ऱ लक्षणं
 भद्रे भगिनी ! भविच्चित्तंनिक्किप्पोळ् । २००
 भागधेयं पूण्ट भागिनेयन् मम
 शोकमाँळिक्कुमवनयययक् नी । २०१
 सोदरनेवं परञ्जतु केट्टथ
 सादरमाशु जरल्कारु चाल्लिनाळ् । २०२
 मातुलन्मारल्लामातुरन्माराय-
 तेतुमरिञ्जतिल्ले नी ममात्मज ! २०३
 चैन्नुनी सर्पसत्रं मुटक्कीटायि-
 लिन्नुतन्ने मुटिञ्जीटुं कुलमल्लाम् । २०४
 माताविवरणं परञ्जतु केट्टप्पोळ्
 मातुलनोटु परञ्जु नट कोण्टान् । २०५
 यागविभूतिकण्टद्भुतं पूण्टवन्
 वेगेन गोपुरद्वारमकंपुक्कान् । २०६

तुम निडर हो कर यहीं रहो । गर्मी तो यहाँ आ ही नहीं सकती । नीच सर्पों का तो निस्सीम नाश होगा आप जैसे अनीचों (सज्जनों) को कोई दुःख न होगा । सहस्राक्ष (इन्द्र) को देखने के कारण तक्षक अग्नि-भय के बिना रह सका । धुएँ के नाक में घुस जाने से व्याकुल होकर वासुकि ने अपनी बहिन से कहा—“हे बहिन ! अब मेरे आसन्नमरणों (मरनेवालों) के से लक्षण उत्पन्न होने लगे हैं । मेरा भाग्यशाली बहनोई मेरा शोक दूर करेगा । उसको मेरे पास भेजो” । भाई की यह बात सुनकर जरत्कारु ने सादर कहा—“हे पुत्र ! तुम्हारे सभी मातुल (मामा) बहुत दुःखित हो गये हैं । क्या तुम्हें नहीं मालूम है ? अगर तुम जाकर सर्पसत्र को नहीं रोकोगे तो आज ही सारा सर्पवंश नष्ट हो जायगा” । १९६-२०४ माता का यह वचन सुनकर अपने मामा से बिदा हो कर (अस्तीक) चले गये । वे याग की विभूति देखकर विस्मित

आक्कु कटक्करुतिङ्ङ तिन्नङ्ङळ्-
 याक्किक्किटक्कुन्निनु नृपतीश्वरन् । २०७
 पाक्क कुरञ्जोरुनेरं तपोनिधे
 काल्क्षणं काण्टुणत्तिच्चु वरां अङ्ङळ् । २०८
 ऐन्निवण्णं द्वारपालन्मार् चाल्कयाल्
 तन्नुळ्ळिलोत्तु कल्पिच्चितस्तीकनुम् २०९
 वन्पुकाण्टन्यगूहमकंपूवति-
 नुम्पर्कोनुं पणि नल्लतनुनयम् । २१०
 इत्थं विनिश्चित्य सत्वरमस्तिकन्
 पृथ्वीशनं स्तुतिचैय्तुनुटङ्ङिन्नान् । २११
 यज्ञत्तयुं मुनीन्द्रन्मारैयुं पुन-
 रग्नियेयुं नृपभृत्यजनत्तयुं २१२
 आक्क वव्वैरं कनक्कं स्तुतिच्चप्पो-
 लुळ्क्कमलं तेलिञ्जारवरेवरुम् । २१३
 भूपन् सदस्यादिकळोटु चोदिच्चु
 तापसबालकन् तेजोनिधि तुलोम् २१४
 इन्नु वरुत्तेणमो पुनरैन्नुतु
 निङ्ङळ् चाल्लीटणमैन्नुतु केट्टवर् २१५
 नल्लनत्ते कटत्तिककाण्टु पोरिक-
 न्नेल्लावरुमारुपोलैय्रियिच्चार् । २१६

हुए और तुरन्त गोपुरद्वार (फाटक) के अन्दर जाने लगे । द्वारपालों ने कहा—“राजा ने हम लोगों का यहाँ इसलिए बैठाया है ताकि कोई यहाँ न आ सके । हे तपोनिधे ! थोड़ी देर ठहरो । एक क्षण में हम सूचना दे कर आ रहे हैं” । उनके इस प्रकार कहने पर अस्तीक मन ही मन सोचने लगे—‘बड़ाई दिखलाकर पराये घर में प्रवेश करना देवराज के लिए भी कठिन है । समझाना ही ठीक होगा’ । ऐसा निश्चय करके तुरन्त ही अस्तीक राजा की स्तुति करने लगे । जब उन्होंने यज्ञकी, मुनीन्द्रों की, अग्नि की, राजा के भृत्यों की, सब की अलग-अलग स्तुति की तब भीतर से सब प्रसन्न हुए । २०५-२१३ राजा ने सदस्यादिकों से पूँछा—‘यह तापसबालक अवश्य तेजोनिधि है । आज उसको यहाँ बुलाना चाहिए या नहीं यह आप लोग तय करके बतलाइए’ । यह सुन कर सब ने एक ही कण्ठ से कहा—‘तापस अच्छा प्रतीत होता है । उसको

चैन्तु कूट्टिकाण्टु पोन्नु मुनीन्द्रनै ।
 मन्नवन् पाद्यासनाध्यादि नल्किनान् । २१७
 ऐन्तोन्नभिमतमैन्नु नरपति
 सन्तोषमोट्टु चोदिच्चोरनन्तरं २१८
 अस्तीकनुत्तरं चाल्लुन्नतिन्मुन्पे
 सत्वरं चाल्लीटिनान् चण्डभार्गवन् । २१९
 तक्षकनिग्रहमसाध्यमनपरा-
 धाक्षिकर्णन्मारैक्कान्तेन्तारु फलम् २२०
 ऐन्तारु कारणं तक्षकन् वाराय्वान्
 चिन्तिक्क नामैन्नुतु केट्टनन्तरं २२१
 चाँन्नार् सदस्यादिकळवनिन्द्रनै-
 च्चैन्नाश्रयिच्चानतिनिल्ल संशयम् । २२२
 तक्षकन्तन्नैयुमिन्द्रनैयुं कूट्ट
 तलक्षणमावाहिच्चु चण्डभार्गवन् । २२३
 आदित्यरुद्रवसुप्रमुखन्मारा-
 मादितेयन्मारुमाय् वन्नु वासवन् २२४
 विष्णुपदत्तिङ्गुलाम्माडुरुच्चितु
 जिष्णुतन्नत्तरीयं पुक्कु तक्षकन् । २२५
 विस्मयं कैक्काण्टु चाँन्नान् नृपतियुं
 भस्ममाक्कीटुक सेन्द्रमित्तक्षकम् । २२६

आने दीजिए' । द्वारपाल मुनीन्द्र को बुला लाया । राजा ने पाद्य, आसन, अर्घ्य आदि दिया और हर्ष के साथ पूँछा—'आप क्या चाहते हैं ?' तदनन्तर अस्तीक के उत्तर देने के पहले ही चण्डभार्गव ने जल्दी से कहा—'तक्षक का निग्रह असाध्य है । निरपराध सपों का वध करने से क्या लाभ है ? तक्षक के न आने का क्या कारण है ? हम लोग जरा सोचें' । यह सुनकर सदस्यों ने कहा—'इस में संदेह नहीं कि वह आश्रय के लिए इन्द्र के पास गया है' । तत्क्षण ही चण्डभार्गव ने तक्षक और इन्द्र का एक साथ आवाहन किया । २१४-२२३ तब आदित्य, रुद्र, वसु आदि देवों के साथ वासव (इन्द्र) पधारें । और विष्णुपद (आकाश) में जैसे स्थिर हो गये । तक्षक जिष्णु (इन्द्र) के उत्तरीय (दुपट्टे) में घुस गया । तब विस्मित होकर राजा ने कहा—'इन्द्र के साथ ही इस तक्षक को भस्म कर दो' । यह सुनकर मुनियों ने कहा—

ँन्तु केटुल्लुच्यु मुनिकळुम्
 मन्नवा नल्कीटुकस्तिकवाञ्छितम् । २२७
 सोमश्रवास्साकुमाचार्यनुं द्विज-
 कामप्रदानं चैकैन्तुलीटिनान् । २२८
 चाल्कभिवाञ्छितमेन्तान् नृपतियुं
 नल्कुवन् वेण्टुन्तैन्तु परञ्जप्पोळ् । २२९
 आतुरमानसन्मारां मुनिजनं
 मेदिनीपालकनोटु चाल्लीटिनार् । २३०
 भीतिपूण्टिन्द्रनयच्चानरिञ्जालुं
 खेदमियन्तारु तक्षकन्तन्नैयुं २३१
 दुष्टाश्रितपरिपालनं नन्नल्ल
 शिष्टजनत्तिनैन्तु वरुं निर्णयम् । २३२
 तक्षकनग्नियिल् वीणु दहिच्चीटु-
 मिक्कम्मसाद्धयवुं वन्नितन्नारवर् । २३३
 अस्तिकनन्नेरमाशु चाल्लीटिनान्
 पृथ्वीपते वरं नल्कीटुक मम । २३४
 चाल्लीटुकैन्नुरच्यु नृपतियुम्
 चाल्लिनानस्तिकनुमभिवाञ्छितम् । २३५
 ँङ्किलिप्पन्नगसत्तं मुटक्कणं सङ्कट-
 मुण्टु जगद्वासिकळ्क्कल्लाम् । २३६

'हे भूपाल ! अस्तीक की इच्छा पूरी करो' । आचार्य सोमश्रवा ने भी कहा—'द्विज के काम की पूर्ति करो' । जब औरों ने कहा कि उसका मांगा दे दो तो राजा ने कहा—'तो फिर कहो क्या चाहते हो' । तब दुःखित मुनिजनों ने मेदिनीपाल (राजा) से कहा—'जान लीजिए कि इन्द्र ने भयभीत हो कर दुःखित तक्षक को भेजा है । इसमें संदेह नहीं कि शिष्टजनों के लिए दुष्टों को आश्रय देना उचित नहीं है । २२४-२३२ तक्षक अग्नि में गिरकर जल जायगा और इस कर्म का लक्ष्य भी सिद्ध हो जायगा' । उस समय आस्तीक ने तुरन्त कहा—'हे भूपाल ! मुझे वर दे दीजिए', राजा ने कहा—'हाँ, कहो क्या है' । तब अस्तीक ने अपनी इच्छा कही । अगर वर देंगे तो इस सर्पसत्त को बन्द करना चाहिए, क्योंकि इससे जगत् के निवासियों को दुःख होता है' । अपने संकल्प के

कल्पितभंगमपेक्षिच्चतु केट्टि-
 टृप्पोळनुतापमोटु नृपन् चाँन्नान् । २३७
 ग्रामधनधान्यरत्नङ्ङळ् नल्कुवन्
 काममवटिल्लेन्तन्तरुळ् चैय्क । २३८
 काममवटिङ्कलेतुमिनिक्किल्ल
 भूमीपते ज्ञान् परयुन्नतु केळ्क्क । २३९
 माताविनुं मम मातुलन्माक्कुमु-
 ळ्ळाधियुं तीर्त्तवर्जीवनं रक्षिक्क । २४०
 पन्नगसवत्तयिन्नु माट्टीटुक
 नल्लतल्लाय्किल् प्रपञ्चं मुटिञ्जुपोम् । २४१
 अस्तिकवाञ्छितं नल्कुक्कन्नु गुरु
 सत्यपरायणन्मारां मुनिकळु २४२
 मौनानुवादमोटे जनमेजयन्
 तानुं मखवरदक्षिणयुं चैय्तान् । २४३
 वह्नियिल् वीळाय्क तक्षकनैन्तु-
 मन्नेरं मून्नुर् चाल्लिनानस्तिकन् । २४४
 सत्यपरनायारस्तिकवाक्किना-
 लत्तल् तीन्नाँन्नु वीर्त्तीटिनान् तक्षकन् २४५
 मदुळ्ळ दुष्टनागङ्ङळ् दहिच्चतु-
 मदमिल्लातोळमुण्टेन्तते वेण्ट् । २४६

भंग की याचना सुनकर राजा ने दुःख के साथ कहा—‘मैं ग्राम, धन, धान्य, रत्न सब दूँगा । कहो, इनमें से क्या चाहते हो ?’ तब अस्तीक बोले—‘इनमें से मैं कुछ भी नहीं चाहता हूँ । हे भूपाल ! सुनो जो मैं कहता हूँ । मेरी माता और मेरे मातुलों का दुःख दूर करो और उनके जीवन की रक्षा करो । अच्छा यही होगा कि यह सर्पसत्र आज ही बन्द किया जाय । नहीं तो सारा प्रपञ्च समाप्त हो जायगा’ । २३३-२४१ तब गुरुजी (यज्ञ के आचार्य) ने और सत्यपरायण मुनियों ने अस्तीक का वाञ्छित पूरा करने के लिये अनुरोध किया । जनमेजय ने मौन हो कर उसे स्वीकार कर लिया और यज्ञ में अच्छी-अच्छी दक्षिणाएँ दीं । अस्तीक ने तीन बार कहा कि तक्षक अग्नि में न गिरे । सत्यसन्ध अस्तीक के वचन से दुःख से मुक्त हो कर तक्षक खुशी से फूल गया । अब इतना ही कहना है कि दुष्ट नागों में से असंख्य जल गये । भूपाल

भूपनवभृथस्नानवुं चैयितु
 तापवुं तीर्नुं जगद्वासिकळ्क्कल्लाम् २४७
 अस्तिकर्नेप्पिन्नस्सल्कारवुं चैयु
 पृथ्वीपति कनिवुट्टु चॉल्लीटिनान् २४८
 अच्युतप्रीतिवरुत्तुवानायिनि-
 यश्वमेधं वेणमन्नंळुन्नळ्ळणम् २४९
 ऐन्नु परञ्जु सुवर्णरत्नादिकळ्
 मन्नवन् वेणुवोळं काटुत्तीटिनान् । २५०
 कौन्तेयन्माराय पाण्डवन्मारुटं
 शान्तगुणमल्लं चॉल्लावतल्लत्ते । २५१
 तत्पुत्रपौत्रनायुण्टायतिन्नुटं
 सल्लोधमेतुमारुद्धुतमल्लल्लो । २५२
 तत्कुलत्तिङ्कलुण्टाकुन्न मन्नवर्
 सलगुणन्मारन्ति ये वरुमारिल्ल । २५३
 भक्तिविश्वासङ्गळ् कण्टु नारायणन्
 मुक्तिप्रदनां मुकुन्दन् तिरुवटि २५४
 दौत्यसारथ्यादि भृत्यकर्म चैय-
 तोर्त्ताल् विचित्रमताक्कु मटुण्टावू । २५५
 अस्तिकनित्थं परञ्जु केट्टुप्पो-
 ल्लुत्तमनां जनमेजयन् चॉल्लिनान् । २५६

ने अवभृथ स्नान किया और जगत् के निवासियों का दुःख समाप्त हुआ । तदनन्तर राजा ने आस्तीक का सत्कार किया और बड़ी कृपा के साथ कहा—“अच्युत की प्रसन्नता के लिए अश्वमेध भी करना है । उसमें आप अवश्य पधारिए” । इतना कह कर राजा ने उनको यथेष्ट सुवर्ण रत्न आदि दे दिया । २४२-२५० कुन्तीपुत्र पाण्डवों के शान्त गुणों का वर्णन करना कठिन है । उसके पुत्र के पौत्र के रूप में जिसका जन्म हुआ है उसके सदबोध में क्या आश्चर्य करना है ? उनके कुल में पैदा हुए भूपाल सदगुणवाले नहीं तो और क्या हो सकते हैं ? उनकी भक्ति और श्रद्धा देखकर मुक्तिप्रद, मुकुन्द, प्रभु नारायण ने उनका दौत्य (दूत बनना) और सारथ्य (सारथी बनना) जैसे भृत्यकर्म किये । यह कितना अद्भुत है । ऐसे कर्म किसके हो सकते हैं ? अस्तीक की यह बात सुनकर उत्तम जनमेजय ने कहा—“अगर ऐसा है तो मेरे प्रपितामहों

ऐङ्किल् प्रपितामहन्मारुटं गुणं
 मंगलमाम्मारैनिक्करियक्कणम् । २५७
 केळक्कणमैङ्किल् वेदव्यासनैन्निम-
 टाक्कु परयावतल्लैन्नु निर्णयम् । २५८
 सत्यवतीसुतनोटु चोदिकक्ते
 स्वस्त्यस्तु सांप्रतमैन्नुन्नळ्ळिनान् । २५९
 मातुलगेहमकंपुक्कितस्तिकन्
 वासुकि मुम्पाय नागप्रवरन्मार्
 अस्तिकनैक्कनिञ्चाश्लेषवुं चैय्तु
 मस्तकत्तिङ्कल् मुक्कर्नु चाल्लीटिनार् । २६१
 सर्पकुलत्तै रक्षिच्चतु पाक्कुम्पो-
 ल्लवयुमद्भुतमैन्ने परयावू । २६२
 ऐन्नु भवानाँन्नु अड्डळ् चैय्येण्टुन्न-
 तन्तर्गतमरुळ्चैय्यालतु तराम् । २६३
 चिन्तितमैन्नुण्टतु परयामैङ्कि-
 लन्तरं पिन्नै वरातैयिरिक्कणम् । २६४
 संध्याकालत्तिङ्कलैन्टै चरितड्डळ
 चिन्तिक्कयुं चाल्कयुं केळक्कयुं चैय्किलो २६५
 पन्नगजातिकळालवक्काक्कुमे
 पिन्नैयारु भयं कूटातिरिक्कणम् । २६६

के गुण मुझे सुनाइए ताकि मेरा कल्याण हो जाय” । (अस्तीक ने उत्तर दिया—) ‘अगर आपको सुनना है तो निःसन्देह वेदव्यास के अतिरिक्त और कोई कह नहीं सकता, इसलिए आप सत्यवती-पुत्र (वेद-व्यास) से पूछिए । आपका कल्याण हो ।’ यह कह कर अस्तीक बिदा हो गये । २५१-२५९ तदनन्तर अस्तीक ने अपने मातुल (मामा) के घर में प्रवेश किया । वासुकि आदि नागप्रमुखों ने प्रेम से अस्तीक का आश्लेष (आलिङ्गन) किया और उनका सिर चूम कर कहा— “आपने सर्पवंश की रक्षा करके बहुत अद्भुत काम किया है । हम और क्या कहें । हम लोग आपकी क्या सेवा करें आप अपने मन की बात कहिए । हम [आपका मनचाहा] देंगे” । (तब आस्तीक ने कहा—) “एक बात मेरे मन में है । वह कहूँगा । पर उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ना चाहिए । संध्या के समय जो मेरे चरित्रों पर ध्यान करें या

आर अश्व भूमे पाद पड़े कि ना पड़े * हाते शेल नरान्तक सेइ अश्व चड़े
 साजाइल रथ, येन रविर प्रकाश * हाते शेल चड़े ताहे वीर महापाश
 आर रथ साजाय माणिक्य-मणि-हीरा * हाते खाण्डा चड़े ताहे कुमार त्रिशिरा
 सुवर्णेर रथ, शत घोड़ार साजनि * सेइ रथे अतिकाय चड़िल आपनि ७७
 पुत्रसब यात्रा करे, शुनि ए वचन * सवार जननी आसि करिछे रोदन
 कुम्भकर्ण-हेन वीर पड़े गेल रणे * ना जाइओ व्यथा दिया जननीर प्राणे
 धनुर्बाण छाड़ बाछा, प्राण बड़ धन * कल्याणे थाकिबे, राख मायेर वचन
 विभा कैले कत देव-दानव-नन्दिनी * कोथा जाहता'-सवारे करि अनाथिनी
 सम्प्रति करिले विभा, नहे सहवास * अग्नि दिया पोड़ाब लंकार गृहवास
 चारि-भाइ चतुर्दल लह स्कन्ध करि * श्रीरामेरे देह ल'ये जानकी सुन्दरी
 हेन कर्म करिले यद्यपि राजा रोषे * पलाइया थाक गिया पर्वत-कैलासे
 कुबेर तोमार पितृ-ज्येष्ठ-भ्रातृबर * सेवि ताँके पुत्रसम थाक ताँर घर
 मातृगण-वचनेते पुत्र सब कोपे * पुत्रगण-क्रोध देखि भये तारा काँपे
 कोपे पुत्रगण बले, दिताम प्रतिफल * जननी बलिया एत सहि ये सकल

सवार हुआ। दूसरे एक अश्व पर नरान्तक बैठ गया जिसके पैर भूमि पर पड़ते थे या नहीं इसमें सन्देह है। सूर्य के प्रकाश के समान रथ सुसज्जित हुआ, जिस पर हाथ में शेल लेकर वीर महापाश आसीन हुआ। दूसरा एक रथ मणि-माणिक्य और हीरों से सुशोभित किया गया जिस पर कुमार त्रिशिरा हाथों में खड्ग लेकर बैठ गया। सौ घोड़ों से सुसज्जित स्वर्ण रथ पर अतिकाय जाकर स्वयं बैठ गया ॥ ७७ ॥

समस्त पुत्र यात्रा कर रहे हैं यह सुनकर उनकी माताएँ आकर रोने लगीं। युद्ध में जब कुम्भकर्ण जसे वीर का निधन हो गया तो तुम बेटे रणक्षेत्र में मत जाना, जननी के हृदय को मत दुखाओ। धनुष-बाण त्याग दो बेटा, प्राण बहुत बड़ी सम्पदा है, माँ का कहना मान लो, कुशल से रहोगे। कितनी ही देव-दानव-नन्दिनियों से तुम लोगों ने विवाह किया है—उनको अनाथिन बना कर कहाँ जा रहे हो। हाल में तुमने विवाह किया है, सहवास भी नहीं हुआ, (अगर तुम लोग चले गये तो) अग्नि से लंका में निवास-गृह को जला दूँगी। चारों भाई अपने कंधों पर चतुर्दल उठाकर उसमें जानकी सुन्दरी को बिठाकर श्रीराम के पास ले जाकर पहुँचा आओ। ऐसा काम करने से यदि पिता रुष्ट होते हैं तो भागकर कैलास पर्वत में जाकर छिप जाओ। कुबेर तुम्हारे पिता के बड़े भाई हैं—उनकी सेवा कर उनके घर में पुत्र के समान रहो। माताओं के वाक्य से सारे पुत्र क्रोधित हो उठे, पुत्रों का क्रोध देखकर माताएँ काँपने लगीं। कुपित पुत्रों ने कहा, अवश्य ही हम इसका बदला चुका देते लेकिन तुम लोग जननी हो इसलिए सहन कर रहे हैं।

जगतेर कर्त्ता मोरा, वीरवंशे जन्म * मानुषेर डरे रब करि सेवाकर्म
 आनिल पुष्पक-रथ पिता जारे जिने * कि लाजे शरण लब ताहार चरणे
 बाहुबले पिता मोर त्रिभुवन शासे * लुकाये थाकिब केन डराये मानुषे
 विपक्ष-सम्मुखे यदि संग्रामेते मरि * दिव्य रथे चड़िया जाइब स्वर्गपुरी
 आपन-मन्दरे जाह, ना कर विषाद * श्रीराम-लक्ष्मणे मारि घुचाव विवाद
 गरुड़ेर मुखे येन भस्म हय साप * ग्रासिब वानर-सेना, देखाव प्रताप
 मातृगणे प्रबोधिया छयजन साजे * रुषिया प्रवेश करे संग्रामेर माझे
 छय-सेनापति-ठाट छय-अक्षौहिणी * कटकेर पदभरे काँपिछे मेदिनी
 धूलाय दिवसे बाट हैल अन्धकार * छय-वीर उत्तरिल करि मार-मार
 दुइ सैन्य मिशामिशि बाजे महारण * गाछ उपाड़िया आने यत कपिगण
 वानरे पाथर-गाछ करे वरिषण * बाणे काटि राक्षसेरा करे निवारण
 राक्षसेरा बाण एड़े अनलेर शिखा * वानर-कटक पड़े, नाहि लेखाजोखा
 व्याघ्रेर झाँपानि येन वानरेर रंग * मरणेर भय नाहि, रणे नाहि भंग
 चड़-चापड़-मुष्ट्याघात वानरेर ताड़ा * कतशत राक्षसेर माथा करे गुंडा ७९

हम लोग संसार के प्रभु हैं, हमारा जन्म वीरवंश में हुआ है सो हम मनुष्य के भय से सेवक का काम करने लग जायें। पिता जिनको हराकर पुष्पक रथ छीन लाये थे, किस मुँह से हम उनकी शरण में जा सकते हैं। मेरे पिता अपने बाहुबल से संसार पर शासन करते हैं और हम मनुष्य से डर कर छिप कर रहें। शत्रु के साथ सम्मुख-संग्राम में अगर हम मरेंगे तो दिव्यरथ पर बैठकर हम स्वर्ग चले जायेंगे। तुम लोग अपने-अपने मन्दिरों में चली जाओ, खेद मत करो, श्रीराम-लक्ष्मण का वध कर सारा भगड़ा ही निबटा देंगे। जिस प्रकार गरुड़ के मुँह में सर्प भस्म हो जाता है, अपने प्रताप से उसी प्रकार हम लोग वानर-सेना को ग्रसित कर लेंगे ॥ ७८ ॥

इस प्रकार माताओं को डारस बँधाकर वे छहों पुत्र सज्जित हुए और क्रुद्ध होकर संग्राम में प्रवेश किया। छहों सेनापतियों के पास छह अक्षौहिणी सेना थी। उसकी पदचाप से धरती काँपने लगी। धूल के कारण दिन के समय भी पथ अन्धकारमय हो गया। छहों वीर मार-मार शब्द करते हुए रण में उतरे और दोनों सेनाएँ मिल जाने से घोर युद्ध ठन गया। सारे कपि वृत्त उखाड़-उखाड़ कर लाने लगे और वृत्त और शिला बरसाने लगे। राक्षसों ने बाण फेंककर उनको घायल कर दिया। राक्षस अनल-शिखा जैसे बाण चलाने लगे जिससे अनगिनत वानर-सेना गिरने लगी। वानर यों कूद-फाँद करने लगे मानों व्याघ्र हों, उनको मृत्यु का भय नहीं और वे रण से भी भागने वाले नहीं। वानरों ने भाँपड़-मुक्का मार-मार कर कितने ही राक्षसों का सिर चूर्ण-विचूर्ण कर दिया ॥ ७९ ॥

अनेक राक्षस पड़े, अत्यल्प वानर * कुपिल ये नरान्तक रावण कोडर
चतुर्दिक चापिया उठिल तार घोड़ा * चतुर्दिके अस्त्रवृष्टि करे जोड़ा-जोड़ा
वानरेर मारे वीर महा-शेलपाट * वानरेर रक्ते कादा ह'ये गेल बाट
नरान्तक-बाण केह सहिते ना पारे * भंग दिया वानर पलाये गेल डरे
डाकिया सुग्रीव कहे अंगदेरे आगे * देख देखि अंगद, कटक केन भागे
आपनि करिया युद्ध राख कपिगण * नरान्तक मारितोष श्रीराम-लक्ष्मण ८०
सुग्रीवेर वचने अंगद पड़े लाजे * कटक साजाये गेल संग्रामेर माझे
रणते प्रवेश करे अति क्रोध मुखे * दूर हैते नरान्तके बालि-सुत डाके
दुइ हात शून्य मोर, देख निशाचर * यत शक्ति आछे हान बुकेर उपर
देवता जिनिस बेटा, शेलेर कारण * आजिकार युद्धे तोर बधिव जीवन
श्रीरामेर भृत्य आमि संसारे पुजित * तुइ अस्त्र पड़िले ना हब आमि भीत
पाइक मारिया बेटा, फिर कि कारण * तोमाते आमाते जुझि, जिने कोन जन
दुइ हात पसारिया येते दिल बुक * अंगद-विक्रम देखि सुग्रीवे कौतुक-
कोपे नरान्तक-वीर-अधरोष्ठ काँपे * एड़िलेक शेलपाट अतिशय कोपे
एड़िलेक शेलपाट दिया हुंकार * स्वर्ग-मर्त्य-पाताले लागिल चमत्कार

राक्षस अधिक गिर रहे हैं और गिरने वाले वानरों की संख्या बहुत कम है
यह देखकर रावण-सुत नरान्तक अत्यन्त कुपित हुआ। घोड़े पर सवार वह
चारों ओर धावा करने लगा तथा चारों ओर अस्त्रों की वर्षा करने लगा।
महा-शेलपाट से उसने वानरों को मारा, वानरों के खून से पथ में कीचड़ हो
गया। नरान्तक के वाणों का कोई सामना नहीं कर सका, डर के मारे वानरों
के पैर उखड़ने लगे। तब सुग्रीव ने अंगद को बुलाकर कहा, अंगद, थोड़ा
देखना तो, वानर-सेना भागने क्यों लग गई है? स्वयं युद्ध कर कपियों को ठहराये
रखो और नरान्तक को मार कर श्रीराम-लक्ष्मण को प्रसन्न करो ॥ ८० ॥

सुग्रीव का वचन सुनकर अंगद को लाज आ गई—वह सेना को सुसज्जित
कर रणक्षेत्र में जा पहुँचा। क्रोधित होकर वह रण में प्रवेश करने लगा तो
दूर से नरान्तक को बालि-सुत ने ललकारा। अरे निशाचर, देख मेरे दोनों
हाथों में कुछ भी नहीं है, तुझमें जितनी शक्ति है उससे मेरे सीने पर शेल
मार। अरे तू देवताओं पर विजय पाता है तो शेल के कारण, लेकिन आज
के युद्ध में मैं तेरे प्राण ले लूँगा। मैं संसार भर में पूज्य श्रीराम का सेवक
हूँ, तू अस्त्र फेंकेगा तो मैं भयभीत नहीं हूँगा। छोटे योद्धाओं को क्यों मारते
फिरते हो, आओ तुम-हम दोनों निबट लें, देखें कौन जीतता है। दोनों हाथ
पसार कर उसने सीना तान दिया। अंगद का विक्रम देखकर सुग्रीव को
बड़ा आनन्द आया। कोप से वीर नरान्तक के होंठ काँपने लगे। उसने
अत्यन्त क्रुद्ध होकर हुंकार के साथ शेलपाट फेंका जिससे स्वर्ग-मर्त्य-पाताल,

अंगदेर बुक येन वज्रेर समान * बुकेते ठेकिया शेल हैल दुइखान
 अंगद बले, तोर अस्त्र गेल रसातल * मोर घा संवर बेटा, तबे जानि बल
 आपना पासरे कोपे बालिर नन्दन * नरान्तके मारिते भावये मने-मन
 वज्रमुष्टि मारि घोड़ा करिलेक चूर * पड़िल दुज्जय घोड़ा ऊर्ध्वे चारिखूर
 दुइचक्षु ठिकरिल, जिह्वा बाहिराय * नरान्तक कुपिया अंगद-पाने चाय
 वज्रमुष्टि मारिलेक अंगदेर बुके * मुखे रक्त उठे तार झलके झलके
 शरीर व्यथित, तबु नहे त कातर * प्रवेश करिल गिया रणेर भितर
 महाबल अंगद अत्यन्त क्रोधभरे * बुके हाँटु दिया तबे नरान्तक मारे ८१
 नरान्तक पड़िल, देखिल देवान्तके * ससैन्येते अंगदे बेड़िल चारिदिके
 हस्तीर उपरे चड़ि आइल महोदर * चालाइया दिल करी अंगद-उपर
 अनुबल त्रिशिरा हइल ततक्षण * अंगदेरे बेड़े आसि वीर दुइजन
 महोदर जाठा मारे अंगदेर बुके * मुखे रक्त उठे वीरेर झलके झलके
 मुखे रक्त उठे, तबु ना हय कातर * अन्धकार करि फेले गाछ ओ पाथर
 मध्येते अंगद चारिदिके निशाचर * देखि हनूमान-वीर धाइल सत्वर
 महारणे मिशामिशि हैल छयजन * बाधिल तुमुल युद्ध, नहे निवारण

तीनों लोक चमत्कृत हो उठे। अंगद का वक्त मानों वज्र का बना हुआ हो—
 जिससे टकराकर उस शेल के दो टुकड़े हो गये। अंगद ने कहा, तेरा अस्त्र
 तो व्यर्थ गया अब मेरा आघात सह ले तो जानूँ। अपने क्रोध को बालि-
 नन्दन ने संवरण किया और मन ही मन नरान्तक को मारने का उपाय सोचने
 लगा। वज्रमुष्टि के प्रहार से उसके घोड़े को मारा, उसका दुजय घोड़ा
 जमीन पर जा गिरा और उसके चारों खुर आकाश की ओर उठ गये, उसकी
 आँखें और जीभ भी कोटरों से बाहर निकल आई। नरान्तक ने क्रुद्ध हो
 अंगद की ओर देखा और अंगद के वक्त पर वज्रमुष्टि मारी। उसके मुँह से
 भल-भल खून निकलने लगा किन्तु शरीर में दर्द होने पर भी वह कातर न
 हुआ, और रणक्षेत्र में डटा रहा। अत्यन्त क्रोध से महाबल अंगद ने नरान्तक
 के सीने पर घुटना दबाकर उसको मार डाला ॥ ८१ ॥

देवान्तक ने नरान्तक को गिरते हुए देखा और अपने सैन्य के साथ अंगद
 को चारों ओर से घेर लिया। अपने हाथी पर बैठा महोदर आया और अंगद
 के ऊपर हाथी चला दिया। इतनी ही देर में वहाँ अनुबल और त्रिशिरा
 आ पहुँचे और दोनों वीरों ने अंगद को घेर लिया। महोदर ने अंगद के
 वक्त पर जाठा (लौहदंड) मारा, अंगद के मुँह से भल-भल खून निकलने लगा।
 मुँह से खून निकलने पर भी वीर जरा सा भी कातर न हुआ और घनघोर
 वृत्त तथा प्रस्तर फेंकने लगा। बीच में अंगद हैं और चारों ओर से उनको
 निशाचर घेरे हुए हैं, यह देखकर वीर हनुमान शीघ्र ही दौड़े। घमासान युद्ध

देवान्तक-हस्ते छिल लोहार पावड़ि * हनूमान-बुके मारे दुहातिया बाड़ि
कुपिल से हनूमान संग्रामेर शूर * पदाघाते देवान्तके करिलेक चूर ८२
हस्तीर उपरे तबे आइल महोदर * नील सेनापति बिन्धि करिल जर्जर
बाण खेये नील वीर करिल उठानि * एकटाने उपाड़े पर्वत एकखानि
एड़िल पर्वत-गोटा शब्द गेल दूर * हस्ति-सह महोदरे करिलेक चूर ८३
तिन-वीर पड़े रणे, देखे अतिकाय * हाते खाण्डा त्रिशिरा संग्राम-माझे जाय
हनूमान महावीरे देखिल सम्मुखे * दुहातिया बाड़ि मारे हनूमान-बुके
प्रहारेते हनूमान आपना पासरे * एकलाफे पड़े तार रथेर उपरे
त्रिशिरार हाते खाण्डा अति खरशान * से खाण्डाय त्रिशिराय करेखान-खान ८४
भाइ भाइपो पड़े रणे, देखे महापाश * हाते गदा कपिगणे करिछे विनाश
नीलवर्ण गदाखान देखि चारिभिते * अधिक हइल रांगा कपिर शोणिते
जयघण्टा बाजे से गदार चारिपाशे * देवता-गन्धर्व-आदि सबे काँपे त्रासे
महापाश-गदा केह सहिते ना पारे * भंग दिया पलाइल सकल वानरे
हेमकूट-कपि आइल वरुण-नन्दन * पर्वत उपाड़े एक घोर-दरशन

में ये छः जने जुट गये और इसके शान्त होने के कोई लक्षण नहीं दिखाई
पड़ रहे थे। देवान्तक के हाथों में लोहे का एक दण्ड था—दोनों हाथों से
उसने हनुमान के वक्त्र पर उसे दे मारा। संग्राम में शूर हनुमान फिर बिगड़
खड़ा हुआ और पदाघात से उसने देवान्तक को चूर्ण-विचूर्ण कर दिया ॥ ८२ ॥

फिर महोदर अपने हाथी पर सवार आया। उसने सेनापति नील को
बाणों से विद्ध कर दिया। बाण खाकर नीलवीर उठे और एक समूचा पर्वत
उखाड़ कर फेंका। पर्वत के फेंकने से दूर-दूर तक शब्द गया और हाथी
सहित महोदर विनष्ट हो गया ॥ ८३ ॥

अतिकाय ने देखा कि तीन वीरों का पतन हो गया। त्रिशिरा हाथ में
खड्ग लेकर संग्राम में कूद पड़ा। उसने सामने महावीर हनुमान को देखा
और दोनों हाथों से खड्ग उठाकर हनुमान के वक्त्र पर वार किया। हनुमान
ने वार से अपने को बचा लिया और कूद कर उसके रथ पर जा गिरा।
त्रिशिरा के हाथ का खड्ग बड़ा ही तेजधार वाला था—उसी खड्ग से उसने
त्रिशिरा को खंड-खंड कर डाला ॥ ८४ ॥

महापाश ने देखा कि युद्ध में उसके भाई और भतीजे गिर गये। गदा
लेकर वह कपियों का नाश करने लग गया। नीले रंग की वह गदा कपि के
रक्त से लाल रंग की हो गई। उस गदा के चारों ओर जयघंटा बजता और
देवता, गन्धर्व आदि सभी त्रास से काँपते। महापाश की गदा का प्रहार कोई
सहन सका और सभी वानर भागने लगे। इतने में वरुण-नन्दन हेमकूट
कपि आया और एक भयंकर दीखने वाला पहाड़ उखाड़ा। क्रोधित होकर

एडिल पर्वतखान अति क्रोधमने * महापाश-वीर पड़े पर्वत-चापने
कृत्तिवास-पण्डित कवित्व विचक्षण * लंकाकाण्डे गाहिलेन गीत रामायण ८५

अतिकायेर युद्धे प्रवेश

पड़े वीर पञ्चजना, देखिबारे पाय * हाते धनु संग्रामे प्रवेशे अतिकाय
चिन्ता करि मने-मने बलिछे तखन * श्रीचरणे स्थान देह कौशल्या-नन्दन
रावण-सन्तान बलि दया ना करिबे * दयामय-राम-नामे कलंक रहिबे
खुडा दुइजन पड़े, सहोदर आर * रुष्ट हैल अतिकाय रावण-कुमार
हीरा-मणि-माणिक्येते शोभे रथखान * एकशत अश्ववर रथेर योगान
माथाय मुकुट शोभे, कर्णते कुण्डल * देवता गन्धर्व जिनि बाडियाछे बल
महाक्रोधे अतिकाय ह'ये आगुसार * दिलेन आपन दिव्य-चापेते टंकार
किवा घोरतर सेइ टंकार-निःस्वन * ताहा शुनि मूर्च्छित हइल कपिगण
बड़-बड़ वीर यत भल्लुक वानर * ताहादेर वक्षःस्थल काँपे थर-थर
तबे सेइ रथे थाकि गंभीर-गज्जने * कहितेछे सम्बोधिया प्लवंगमगणे
ओरे ओरे महामूर्ख मर्कट-सकल * पलाह पलाह तोरा छाड़ि रणस्थल
त्रिभुवने अति ख्याति अतिकाय नाम * आसियाछि आमि आजि करिते संग्राम
उसने उस पहाड़ को फेंका । उसी पहाड़ से दबकर वीर नागपाश गिरा ।
कवित्व में विचक्षण पंडित कृत्तिवास ने लंकाकांड में रामायण का गीत
गाया ॥ ८५ ॥

अतिकाय का रण में प्रवेश

पाँचों वीर गिर गये यह अतिकाय ने देखा और हाथों में तीर-धनुष लेकर
उसने संग्राम में प्रवेश किया । उस समय वह मन ही मन चिन्ता कर कहने
लगा, हे कौशल्या-नन्दन तुम अपने श्रीचरणों में मुझे स्थान दो । रावण-पुत्र
होने के कारण तुम मुझ पर अगर दया नहीं करोगे तो राम के दयामय नाम
पर कलंक लगेगा । दो चाचा गिर गये और सहोदर भी । रावण-कुमार
अतिकाय यह सोचकर क्रुद्ध हो गया । हीरा-मोतियों से जगमगाते रथ में सौ
घोड़े जुते हुए थे । सिर पर मुकुट शोभायमान था और कानों में कुंडल । देवता
और गन्धर्वों पर विजय प्राप्त करने के कारण इसकी शक्ति पर्याप्त बढ़ चुकी थी ।
अतिकाय महाक्रोध से आगे बढ़ा और अपने दिव्य धनुष पर उसने टंकार-ध्वनि
भी कितनी घनघोर की कि उसे सुनकर कपि मूर्च्छित होने लगे । जितने बड़े-
बड़े रीछ और वानर थे सभी के हृदय थर-थर काँपने लगे । उस रथ पर
बैठकर गंभीर गरजते स्वर में उसने कपियों को सम्बोधित करते हुए कहा, अरे
महामूर्ख मर्कट-मंडली ! रणक्षेत्र छोड़कर तुम सब भाग जाओ । अतिकाय
का नाम त्रिभुवन में प्रख्यात है, और आज मैं ही युद्ध करने आया हूँ । आज

आजि ना राखिब एइ भुवन-भितर * आपन पितार रिपु कपि किंवा नर तोरा केन मोर अग्रे मरिस् थाकिया * हित कहि, प्राण ल'ये जाह पलाइया एत बलि सिंहनाद करे घन-घन * ताहे अति त्रासित हइल कपिगण आर तार अतिशय भयंकर काय * देखिया वानर सब भयेते पलाय केह केह सेतु दिया जाय सिन्धुपारे * केह प्रवेशये वने, केह बलि-द्वारे केह केह सिन्धु-जले थाकये डुबिया * केह लता-पत्तादिते देह आच्छादिया केह केह प्रवेशये वृक्षेर कोटरे * केह केह कुम्भकर्ण-वदन-विवरे केह केह भये निजे मृत जानावारे * शयन करिया रहे शवेर माझारे केह केह श्रीरामेर निकटे जाइया * कहितेछे अतिकाय-वीरे देखाइया देख देख रघुवर, रणेर भितर * आसियाछे अति बड़ एक निशाचर उहारे देखिबामात्र यत कपिगण * त्रासित हइया सबे कैल पलायन कपिगण-कथा शुनि श्रीरघुनन्दन * अतिकाये देखि हैल सविस्मय-मन यद्यपि प्रथम-रणे देखेछिला तारे * तथापि बिस्मय हैल अन्तर-माझारे अलौकिक पदार्थेर एइ धर्म हय * देखिलेओ नव-नव-रूपे प्रकाशय तबे रघुपति निज-मिता विभीषणे * जिज्ञासा करने अति-मधुर-वचने ८६ देख मिता विभीषण, रणे एल कोन जन, पर्वत-प्रमाण रथे चापि ।

निजेओ भूधरे जिति, श्यामवर्ण शिलाकृति, अति भयंकर भूप्रतापी ॥

इस संसार में अपने पिता के शत्रु नर और वानर एक भी शेष न रखूंगा । क्यों तुम लोग मेरे सामने रहकर मरना चाहते हो, तुम्हारे हित की बात करता हूँ, अपने प्राण लेकर तुम भाग जाओ । इतना कहकर वह बार-बार सिंहनाद करने लगा, जिसने सारे कपि अत्यन्त आतंकित हो गये और उसकी भयंकर विशाल देह देखकर सारे वानर भय से भागने लगे । कोई कोई तो सेतु से सिन्धु लांघ कर दूसरी ओर चला गया, तो कोई जंगल में घुस गया, तो कोई बलि के द्वार, कोई-कोई समुद्र के जल में जाकर डूब कर खड़ा रहा । किसी ने वृक्षों के पत्ते और लताओं से अपने को ढँक लिया, तो कोई वृक्ष के कोटरों में छिप गया । कोई-कोई मृत कुम्भकर्ण के मुँह गह्वर में छिप गया तो कोई अपने को मृत जताने के लिए शवों के बीच जाकर लेट गया । कोई-कोई श्रीराम के निकट जाकर अतिकाय वीर को दिखाकर कहने लगा, देखो रघुवर, आज रणक्षेत्र में बहुत बड़ा एक निशाचर आया है, उसको देखते ही सारे कपि भय से भाग गये । कपियों की बात सुनकर श्रीरघुनन्दन ने अतिकाय को देखा और विस्मित हुए । यद्यपि प्रथम रण में उसको देखा था फिर भी उसको देखकर अन्तर विस्मय से भर गया । अलौकिक वस्तुओं का यही स्वभाव होता है, देखी हुई होने पर भी वे नये-नये रूप में प्रकट होती हैं । तब रघुपति ने अपने मित्र विभीषण से अत्यन्त मधुर वचन में पूछा ॥ ८६ ॥

सुनो मित्र विभषण, जरा देखना, पर्वत-प्रमाण रथ पर बैठा रण में यह

मुकुट शोभये शिरे, येन नील-धराधरे, सुवर्णेर शृंग शोभा पाय ।
 पिंगल नयनद्वय, भुजेते अंगदचय, गले नाना-आभरण ताय ॥
 किवा देखि रथखान, दशशत परिमाण, घोटकेते बहितेछे जारे ।
 पञ्च सुसारथि जार, ध्वज नर-मुण्डाकार, पताका उड़िछे चारिधारे ॥
 देखि रथ-उपरते, अस्त्र-शस्त्र नानामते, शेल शूल मुषल मुद्गर ।
 तीक्ष्ण-तीक्ष्ण भिन्दिपाल, शत-शत तरवाल, काठार कुठार बहुतर ॥
 अतिशय भयंकर, लौहमय बाण खर, अष्टत्रिंश तूण शोभा करे ।
 स्वर्णबद्ध सुशोभन, दिव्य-दिव्य शरासन, चारिदिके रहे थरे-थर ॥
 दशहस्त परिमाण, दुइपाशे दुइखान, खड्ग दुलितेछे भयंकर ।
 धरियाछे वामकरे, एकखान धनुकरे, इन्द्रधनुः सम दीर्घतर ॥
 निरखिया एइजने, पलाइछे स्थाने-स्थाने, वानर-सकल भीतमने ।
 के बटे, काहार पौत्र, कि नाम, काहार पुत्र, कह मिता, मम विद्यमाने ॥ १८७

अतिकायेर युद्ध ओ मृत्यु

श्रीराम-वदने शुनि एतेक वचन * विभीषण तांहारे करेन निवेदन
 विश्रवार पौत्र प्रभु, रावण-नन्दन * अतिकाय-नामधारी हय एइजन
 जनम इहार धान्यमालिनी-उदरे * आपन पितार तुल्य ए हय समरे

कौन आया । स्वयं भी वह मूधराकार है, श्यामवर्ण प्रस्तर के समान है और
 भयंकर पराक्रमी प्रतीत होता है । जिस प्रकार नीले पर्वत की चोटी पर स्वर्ण-
 शिखर शोभा पाता है उसी प्रकार उसके मस्तक पर मुकुट शोभायमान है ।
 वह रथ भी कैसा जिसको दश-शत घोड़े खोंच रहे हैं । पाँच-पाँच सारथी
 जिस पर बैठे हैं और नर-मुंड के आकार के ध्वज जिस पर हैं, उसके चारों
 तरफ भंडियाँ फहरा रही हैं । देख रहा हूँ कि रथ के ऊपर शेल, शूल,
 मूसल, मुद्गर, तेज भिन्दिपाल, सैकड़ों तलवारें, अनेक प्रकार के फरसे और
 कुल्हाड़े रखे हैं । अतिशय भयंकर लोहे के खरधार (तेज धार वाले) बाणों
 से भरे अड़तीस तूण (तरकस) शोभायमान हैं । सोने से मढ़े हुए दिव्य
 आकार के कितने ही धनुष सुसज्जित रखे हैं । दो बाजुओं में दस-दस हाथ
 लम्बे भयंकर दो खड्ग लटक रहे हैं । बाएँ हाथ में उसने एक लम्बा सा धनुष
 थाम रक्खा है जो कि इन्द्रधनुष सा लम्बा है । इसको देखकर भयभीत हो
 स्थान-स्थान पर वानर भाग रहे हैं । यह कौन है, किसका पुत्र और किसका
 पौत्र है, हे मित्र मुझको बताना ॥ १८७ ॥

अतिकाय का युद्ध और मृत्यु

श्रीराम के मुँह ऐसे वचन सुनकर विभीषण ने उससे निवेदन किया, हे
 प्रभु, यह विश्रवा का पौत्र है और रावण का पुत्र है, इसका नाम अतिकाय है ।

अमैन्दाङ् गौळुहान् अळवरियान् तन्नै
वियन्दात् विरैन्दु केडुम् ॥ ४ ॥

मदहोशी में पड़ोसियों से बैर, न बल का सही शुमार !

ऐसे आत्मवंचकों^१ शेखीखोरों का समीप संहार ॥ ४ ॥

जिसने [अपने बल के मद में] पड़ोसियों को प्रतिकूल कर रखा है,
अपने बल को नहीं आँका है, और जो अपनी शेखी और बड़ाई में चूर
है, वह निश्चय शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

पीलिपैय् शागाडुम्† अच्चिरुम्;† अप्पण्डम्†
शाल मिहुत्तुप् पयिन् ॥ ५ ॥

अपने बल का और अबल का रखना समुचित सदा विचार ।

मोरपंख का भार तलक भी अधिक न सकती लड़ी^२ संहार ॥ ५ ॥

[मनुष्य को सदैव अपने बल-अबल का सही अन्दाज़ा रखना चाहिए ।
थोड़ा भी भ्रम होने पर वह विरोधी से विनाश को प्राप्त हो
सकता है । जितना भार चाहिए उससे] एक कोमल मयूरपंख का भार
भी अधिक होने पर गाड़ी के पहिए की धुरी टूट कर ही रहेगी ॥ ५ ॥

नुत्तिकौम्बर् एरितार् अह्दिरन् दूक्किन्
उयिर्विकरुदि याहि विडुम् ॥ ६ ॥

तरु-फुनगी से बढ़े^३ कि मानो निश्चय तरु से हुआ प्रपात^४ ।

बल-बूते को भूल किया दुःसाहस तो विनाश की बात ॥ ६ ॥

[अपनी शक्ति की सीमा से बाहर जाने वाले व्यक्ति को, उत्साह,
साहस, बल—कोई भी विनाश से नहीं बचा सकता ।] वृक्ष की शाखाओं
की एक सीमा होती है । वहीं तक चढ़ा जा सकता है । शाखाओं
की फुनगी को भी पार करने वाले दुःसाहसी का अंत तो विनाश ही है;
[उसका साहस उसको बचा नहीं सकता ।] ॥ ६ ॥

आट्रिन् अळवरिन्दु ईह; अदुपौरुळ्
पोट्रि वळङ्गुम् नैरि ॥ ७ ॥

करता दान सदा निज पूंजी की सीमा का रख कर ध्यान,

उसकी सम्पत्ति सदा सुरक्षित, यद्यपि नित करता है दान ॥ ७ ॥

† शकट, अक्ष, माण्ड—इन शब्दों के रूप संस्कृत में इस प्रकार हैं, अर्थात् समान हैं ।

१ अपनी झूठी बड़ाई में चूर रहने वाले, अपने ही को ठगने वाले २ बलगाड़ी
३ पेड़ की चोटी तक पहुँच कर उसके भी आगे ४ गिराव, पतन ।

अपनी पूंजी की सीमा के अनुसार ही जो दान करता है, वह अपनी पूंजी (धन) को स्थायी रखते हुए भी सदैव दान करते रहने की स्थिति में रहेगा ॥ ७ ॥

आहा उळविट्टि तायिनुम् केडिल्लै;

पोहा उहलाक् कडै ॥ ८ ॥

कितनी ही कम आय^१, किन्तु यदि व्यय^२ पर तुमको है अधिकार^३,
आमद से यदि खर्च न ज्यादा, तो न तबाही^४ के आसार ॥ ८ ॥

आमदनी कितनी ही थोड़ी हो, यदि खर्च उससे अधिक नहीं [और मर्यादित] है, तो वह कभी तबाही में नहीं पड़ सकता ॥ ८ ॥

अळवरिन्दु वाळादान् वाळ्वकै उळपोल

इल्लाहित् तोन्नाक् केडुम् ॥ ९ ॥

खर्च हैसियत से बाहर देता कुछ दिन की झूठी शान ।

धीरे-धीरे किन्तु बिगड़ता जाता है ऐसा इन्सान ॥ ९ ॥

अपनी हैसियत में न रह कर ठाट-बाट से रहनेवाला व्यक्ति देखने में भले ही शानदार मालूम हो, धीरे-धीरे बिगड़ता हुआ वह निश्चय एक दिन दुर्दशा को प्राप्त होगा ॥ ९ ॥

उळवरै तूक्काद औप्पुर वाण्मै

वळवरै वल्लैक् केडुम् ॥ १० ॥

पूंजी की सीमा से बाहर दान-धर्म का भी आचार,

पूंजी का विनाश कर देता जो है इन सब का आधार ॥ १० ॥

अपनी पूंजी की सीमा के बाहर जो व्यक्ति उदार और दानशील हो कर असंतुलित ढंग पर धन खर्च करता है वह एक दिन अपनी समस्त पूंजी ही से हाथ धो लेगा [जिसके बल पर वह हैसियत बाहर दान करता था ।] ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ४९

कालम् अरिदल (सामयिकता का ज्ञान)

पहल्वेल्लुम् कूहैयैक् काक्कै; इहल्वेल्लुम्

वेन्दर्कु वेण्डुम् पौळुदु ॥ १ ॥

दिवस-उद्योति में दीन काक^१ से संभव है उल्लूक^२ का नाश ।

उसी भाँति समुचित अवसर पाकर नृप करता शत्रु-विनाश ॥ १ ॥

[दिन में अन्धे रहने वाले] उल्लू को दिन के प्रकाश में एक कौवा [जैसा सामान्य जीव] भी मार सकता है । इसी प्रकार शासक को भी अपने शत्रु को परास्त करने के लिए उपयुक्त अवसर की ताक में रहना चाहिए [कि कब उसके शत्रु के लिए प्रतिकूल परिस्थिति होगी ।] ॥ १ ॥

परुवत्तो डोट्ट वौळुहल् तिरुविनैत्
तीरामै आरक्कुम् कयिरु ॥ २ ॥

सदा सुअवसर पर पग देना, है जिस जन का सहज स्वभाव ।

सदा सफल सौभाग्य-रञ्जु^३ से बँधा, न उसको कभी अभाव ॥ २ ॥

सुअवसर पर ही काम में पैर बढ़ाने का जो अभ्यासी है, उसने मानो सौभाग्य से बाँधने वाली रस्सी प्राप्त कर ली ॥ २ ॥

अरुविनै अन्व उळवो करुवियार्
कालम् अरिन्दु शेयिन् ॥ ३ ॥

सदा सुअवसर पर समुचित साधन का करते कुशल प्रयोग ।

दुष्कर^४ से दुष्कर कामों को सुकर^५ बनाते ऐसे लोग ॥ ३ ॥

उपयुक्त साधनों से और उपयुक्त सुअवसर पर कुशलता से कार्य करने का जो व्यक्ति अभ्यासी है, उसके लिए संसार में कोई कार्य कठिन और असंभव नहीं ॥ ३ ॥

जालम् करुदिनुम् कैकूडुम् कालम्
करुदि इडत्तार् शेयिन् ॥ ४ ॥

देश-काल को परख सर्वदा करता कर्म कुशल मतिमान ।

समय-पारखी^६ ऐसे जन को विश्वविजय भी है आसान^७ ॥ ४ ॥

[देश-काल-पात्र का विचार रखने वाला] जो व्यक्ति (अथवा शासक) उपयुक्त स्थान-अवसर पर और उपयुक्त [साधनों से] कार्य करता है, उसके लिए विश्व-विजय भी असंभव नहीं ॥ ४ ॥

कालम् करुदि इरुप्पर् कलङ्गादु
जालम् करुदु पवर् ॥ ५ ॥

१ कौआ २ उल्लू ३ सौभाग्य की रस्सी ४ अति कठिन ५ सरल

६ मौक़ा पहचाननेवाला ७ सरल ।

शान्त, अचञ्चल रह कर मौक्रे की हैं सदा ताकते राह ।
करते चोट सदा मौक्रे पर विश्वविजय की जिनको चाह ॥ ५ ॥

जिनको विश्व-विजय की अभिलाषा है, वे शान्त और उद्वेगरहित रह कर उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते हैं और मौका आते ही विरोधी पर चोट करते हैं ॥ ५ ॥

ऊक्कम् उडैयान् औडुक्कम् पौरुदहर्
ताक्कर्कुप् पेरुम् तहैत्तु ॥ ६ ॥

जैसे पीछे हटकर मेढ़ा, रिपु पर करता पुनः प्रहार ।
मौक़ा आने तक दुबके रहना^१ न भीस्ता^२ उसी प्रकार ॥ ६ ॥

बलवान [यदि सुअवसर की प्रतीक्षा तक अपने को शांत रखता है तो यह दुर्बलता नहीं है, वरन् यह उस] का आत्म-संयम [और कौशल] वैसा ही है जैसे लड़ता हुआ मेढ़ा विपक्षी पर तीव्र चोट करने के लिए पीछे हटता है [और तब बढ़ कर अधिक सशक्त प्रहार करता है] ॥ ६ ॥

पौळ्ळैन् आङ्गे पुरम्बेरार्; कालम्पार्त्तु
उळ्वैर्प्पर् औळ्ळि यवर् ॥ ७ ॥

उर में ज्वाला छिपी, प्रकट में शान्त, तर्क मौक्रे की राह ।
अवसर पर प्रहार करते हैं, यही संयमी हैं नरनाह ॥ ७ ॥

बुद्धिमान क्रोध को उत्तेजना में प्रकट नहीं होने देते । वरन् [शत्रु को परास्त करने का] उपयुक्त अवसर आने तक वह क्रोध की ज्वाला उनके हृदय में छिपी किन्तु धधकती रहती है ॥ ७ ॥

शैरुनरैक् काणिर् चुमक्क; इरुवरै
काणिर् किळक्काम् तलै ॥ ८ ॥

करो शत्रु-सम्मान—नीति यह दुर्बलता का नहीं निशान ।
अवसर का आघात^३ स्वयं उस रिपु का कर देगा अवसान^४ ॥ ८ ॥

शत्रुओं से साक्षात् होने पर सम्मान और विनय के साथ उनसे पेश आओ । [यह नीति है, दुर्बलता का द्योतक नहीं ।] उपयुक्त अवसर आने पर वे शत्रु [पराजित होकर सहज ही] तुम्हारे सामने शीस झुकाये होंगे ॥ ८ ॥

अैय्दर् करियदु इयैन्दक्काल् अन्निलैये
शैय्दर् करिय शैयल् ॥ ९ ॥

१ दबे-सिमटे रहना २ कायरता ३ मौक्रे पर चोट ४ अन्त ।

बार बार अवसर दुर्लभ है, ज्योंही मिले समय अनुकूल ।
विना विलम्ब प्रहार न करने पर संभव है सब प्रतिकूल ॥ ९ ॥

[मौका सदैव नहीं आता, इसलिए उस] दुर्लभ और उपयुक्त अवसर के आते ही विना चूके भरपूर चोट करो [अथवा उस घड़ी से अपने अभीष्ट महान् कार्य के लिए पूरा लाभ उठाओ] अवसर निकल जाने पर फिर कुछ न होगा ।] ॥ ९ ॥

कौक्कौक्क कूम्बुम् परवत्तु; मट्टन्दन्

कुत्तौक्क शीरुत्त इडत्तु ॥ १० ॥

ध्यान-लीन बक^१ मीन^२ देखते ही करता है झपट शिकार ।

बगुले के समान, मौके तक रुको, करो फिर उग्र प्रहार ॥ १० ॥

अवसर आने तक बक (बगुले) के समान अपने पंख समेटे ध्यानावस्थित प्रतीक्षा करो; और ज्यों ही ठीक अवसर सामने आवे, तुरन्त पूरे वेग से [झपट कर मछली रूपी शिकार पर] बगुले के समान ही चोट करो ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ५०

इडन् अरिदल् (उपयुक्त स्थान का चुनना)

तौडङ्गर्क ओव्विनैयुम् ओळ्ळर्क मुट्टुम्

इडङ्गण्ड पित्तल् लदु ॥ १ ॥

है मौका अनुकूल न जब तक, मिले न सुविधा का अस्थान^३ ।

उचित न, रिपु पर करो आक्रमण, छोड़ो और करो अपमान ॥ १ ॥

जब तक [सुरक्षा और आक्रमण के] अनुकूल स्थान पर स्थित न हो जाओ, तब तक कभी शत्रु पर आक्रमण न करो, न शत्रु को तिरस्कृत करो [और उत्तेजना दिलाओ] ॥ १ ॥

मुरण्शेरन्द मौय्म्बि तवरक्कुम् अरण्शेरन्दाम्

आवकम् पलवुम् तरुम् ॥ २ ॥

रिपु निर्बल, अनन्त रण-सज्जा^४ ! फिर भी कहते चतुर सुजान ।

अपने मन की रणस्थली^५ के भी अपने हैं लाभ महान् ॥ २ ॥

शक्तिशाली सम्राटों के लिए भी, [अपने से निर्बलों पर भी]

१ चुपचाप ताकनेवाला बगुला

२ मछली

३ स्थल

४ युद्ध-सामग्री

५ रणभूमि ।

आक्रमण और [उनसे] युद्ध में लगे होने पर, आरक्षित दुर्ग अनेक प्रकार से लाभकारी सिद्ध होते हैं ॥ २ ॥

आट्शरुम् आट्शि अडुब इडनरिन्दु
पोट्शरुक् पोट्शि चैयिन् ॥ ३ ॥

आरक्षित अनुकूल भूमि पर रण करते यदि युद्ध-प्रवीन^१ ।

सबलों के समान जय पाते ऐसे कुशल किन्तु बलहीन ॥ ३ ॥

सामरिक दृष्टि से श्रेष्ठ भूमि अथवा दुर्ग की सहायता से मोर्चा जमा कर युद्ध करने पर निर्बल भी [सबल हो जाते और] सबलों के समान जय प्राप्त करने में सफल होते हैं ॥ ३ ॥

अैणियार् अैणम् इळप्पर् इडनरिन्दु
तुन्नियार् तुन्निच् चैयिन् ॥ ४ ॥

सुविधाजनक सुरक्षित थल पर चुनते समरभूमि अनुकूल ।

उनके रिपुओं के मन्सूबे^२ निष्फल सदा चाटते धूल ॥ ४ ॥

[व्यूह, दुर्ग, भूमि की श्रेष्ठता आदि से] आरक्षित, सुरक्षित और सुविधाजनक स्थिति से जो युद्ध करते हैं उनके शत्रुओं के सारे मन्सूबे मिट्टी में मिल जाते हैं ॥ ४ ॥

नैडुम्बुत्तलुळ् वैल्लुम् मुदलै; अडुम्बुत्तलिन्
नीङ्गिन् अदनैप् पिर ॥ ५ ॥

गहरे जल में भला मगर से किस सशक्त का है निस्तार ?

जल से बाहर उसी मगर का कर सकता हर व्यक्ति शिकार ॥ ५ ॥

गहन जल में रहते मगर सब का विनाश कर सकता है । किन्तु उसी जल से हट जाने पर उस विकराल मगर को कोई भी मार सकता है । [यह अपने अनुकूल स्थान की महिमा है ।] ॥ ५ ॥

कडल्ओडा काल्वल् नैडुन्देर्; कडल्ओडुम्
नावायुम् ओडा निलत्तु ॥ ६ ॥

अति विशाल गाड़ी भी जल में, थल में उसी भाँति जलयान^३ ।

हैं दोनों लाचार ! मुनासिब अस्थल^४ का है मूल्य महान् ॥ ६ ॥

[अनुकूल स्थान का बड़ा महत्त्व है ।] मज्रबूत से मज्रबूत पहियों वाली बड़ी-बड़ी गड़ियाँ भी समुद्र में नहीं चल सकतीं [और व्यर्थ होकर जल में डूब जायँगी ।] उसी प्रकार बड़े से बड़े समुद्र को तैर जाने वाले

जलयान (जहाज) भी [जल से हट कर] पृथ्वी पर एक पग भी नहीं चल सकते ॥ ६ ॥

अञ्जामै अल्लाल् तुणैवेण्डा अञ्जामै
अेण्णि इडत्तार् चैयिन् ॥ ७ ॥

निज सुविधा की श्रेष्ठ भूमि पर जम कर यदि निर्भीक^१ प्रहार ।
फिर न अन्य साधन की उसको रिपु-जय करने में दरकार^२ ॥ ७ ॥

युद्ध के लिए सामरिक दृष्टि से उपयुक्त और श्रेष्ठ स्थान यदि किसी ने चुन लिया है, तो निर्भय साहसिक प्रहार के अतिरिक्त फिर उसको युद्ध-जय के लिए किसी अन्य साधन या सहायता की जरूरत नहीं ॥ ७ ॥

शिरुपडैयान् शोल्लिडम् शेरिन् उरुपडैयान्
ऊक्कम् अळिन्दु विडुम् ॥ ८ ॥

छोटी सेना, क्षेत्र संकुचित^३ चुन कर यदि करती है युद्ध ।
विशद सशक्त सैन का हमला कर सकता कुछ नहीं विरुद्ध ॥ ८ ॥

अत्यंत विशाल सेना को लेकर भी, संकुचित छोटे किन्तु अनुकूल दुर्ग में जमे हुए सामान्य सेना वाले शत्रु से युद्ध करने पर भी विनाश निश्चय है ॥ ८ ॥

शिरैनलत्तुम् शीरुम् इलर्अैत्तिनुम् मान्दर्
उरैनिलत्तो डौटल् अरिदु ॥ ९ ॥

साधारण है सैन, और रण-सज्जा का न अधिक सामान ।
किन्तु उसी के गढ़ में लड़ कर है सशक्त पाता अपमान ॥ ९ ॥

विशाल सैन-व्यूह, और रणसज्जा से विहीन शत्रु से भी उसके गढ़ में युद्ध करके जय पाना दुष्कर है ॥ ९ ॥

कालाळ् कळरिन् नरिअडुम् कण्णञ्जा
वेलाळ् मुहत्त कळिरु ॥ १० ॥

दलदल में फँस कर प्रमत्त गज भी होता निरीह लाचार ।
तुच्छ लोमड़ी भी हाथी को बेमोक्ता देती है मार ॥ १० ॥

निरंकुश और घातक [उन्मत्त] हाथी भी जब दलदल में फँसा होता है, तब एक तुच्छ गीदड़ तक [हाथी को प्रतिकूल स्थान में ग्रस्त पाकर] उसको मार गिराता है ॥ १० ॥

१ निर्भय, साहसिक २ जरूरत ३ सीमित, छोटा ।

अदिहारम् (अध्याय) ५१

तेरिन्दु तेळिदल् (विश्वास की परख)

अरम्पौरुल् इन्बम् उयिरच्चम् नान्गिन्
तिरम्तेरिन्दु तेरप् पडुम् ॥ १ ॥

धर्म, अर्थ, औ' काम, मृत्यु के लाभालाभ दिखाकर जाँच—

वही भरोसे-योग्य, सह सके जो इन उपधाओं^१ की आँच ॥ १ ॥

[विश्वसनीय कामों को सौंपने से पहले] सुपात्र को चुनने के लिए परखना चाहिए कि धर्म, अर्थ (सम्पदा), काम (सुखोपभोग) और जीवन-मरण के प्रति उसकी क्या पृवृत्ति है ! [वह संकट की घड़ी उपस्थित होने पर कितना धर्म पर दृढ़, धन और सुखोपभोग से विरक्त और मृत्यु से निर्भय रह कर कर्त्तव्य के प्रति निष्ठावान् रह सकता है ?] ॥ १ ॥

कुडिप्पिरन्दु कुट्टरत्तिन् नीङ्गि वडुप्परियुम्
नाणुडैयान् कट्टे तेळिवु ॥ २ ॥

उत्तम कुल-मर्यादा वाले, पापभीरु^२, अकलंक स्वभाव—

ऐसे कुशल-मुयोग्य व्यक्ति का समुचित है सर्वथा चुनाव ॥ २ ॥

श्रेष्ठ संस्कारों वाले कुलों में उत्पन्न, निर्दोष, पाप से डरने वाले [संतुलित] व्यक्तियों को ही [कार्य-सञ्चालन के लिए] चुनना चाहिए ॥ २ ॥

अरियकट्टु आशट्टार् कण्णुम् तैरियुङ्गाल्
इन्मै अरिदे वैळिह ॥ ३ ॥

है ऐसा विद्वान् कौन जिसमें न दोष का है लवलेस ।

[इसी लिए उपधा^१ के द्वारा समुचित उसकी जाँच विशेष] ॥ ३ ॥

परम विद्वानों और बुद्धिमानों में भी विरले ही ऐसे होते हैं जो अज्ञान और दोष से बिलकुल विहीन हों । [इस लिए प्रत्यक्ष सर्वगुण-सम्पन्न होने पर भी उनकी परीक्षा, उनको परखना जरूरी है] ॥ ३ ॥

१ उपधा—प्रलोभन, रिश्वत; उपधा—धर्म, धन, सुन्दर तारी और मृत्यु का लोभ या भय प्रस्तुत करते हुए छिपकर परीक्षा करना कि जिस व्यक्ति पर भरोसा करना है, वह इन चार परिस्थियों में पड़ कर कहाँ तक निर्लेप रहेगा । २ पाप से डरने, दूर रहने वाला ।

शरीफज़ादः (आर्यपुत्र)

(मिर्जा रुस्वा का शिक्षाप्रद उपन्यास)

उर्दू - देवनागरी वर्णमाला

ट ٲ	त ٲ	प ٲ	ब ٲ	अ ٲ
ख ٲ	ह ٲ	च ٲ	ज ٲ	स ٲ
ङ ٲ	र ٲ	ज़ ٲ	ड ٲ	द ٲ
स ٲ	श ٲ	स ٲ	झ ٲ	ज़ ٲ
ग ٲ	अ ٲ	ज़ ٲ	त ٲ	ज़ ٲ
ल ٲ	ग ٲ	क ٲ	क ٲ	फ ٲ
य ٲ	ह ٲ	व ٲ	न ٲ	म ٲ
	य ٲ			

झ ٲ	ठ ٲ	थ ٲ	फ ٲ	भ ٲ
ख ٲ	ढ ٲ	ढ ٲ	ध ٲ	छ ٲ
आ ٲ	उ ٲ	इ ٲ	अ ٲ	घ ٲ

भुवन वाणी ट्रस्ट

प्रभाकर निलयम्

४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

प्रकाशक—भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३

प्रथम संस्करण—अक्तूबर, १९७१ मूल्य रुपिया—४.००

मूललेखक—डॉ० मिर्जा मुहम्मद हादी 'रुस्वा'

लिप्यन्तरण-सम्पादक—डॉ० सय्यद असदअली, एम० ए०, पीएच्० डी०

लिप्यन्तरणकार—विनयकुमार अवस्थी

मुद्रक—वाणी प्रेस,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

विषय-प्रवेश

वाणी, भाषा और लिपि

मन के भावों और उद्गारों को मुख से प्रकट करना, यही वाणी है। पशु, पक्षी अथवा मनुष्यों में जब कोई वर्ग एक प्रकार की वाणी बोलता है, उस बोली से परस्पर भावों को कहता, सुनता और समझता है, तब वाणी के उस प्रकार को उस विशिष्ट-वर्ग की भाषा की संज्ञा दी जाती है। और उसी भाषा को जब चिह्नों-आकृतियों में लिख कर प्रकट किया जाता है, तब उन्हीं चिह्नों और आकृतियों को उस वर्ग-विशेष की लिपि कहा जाता है।

कुछ विद्वानों के मत से धरातल पर पृथक्-पृथक् भूखण्डों में विभिन्न समयों पर मानवों की सृष्टि और विकास होता रहा है। वे सब एक ही स्थान पर एक ही मानव से उत्पन्न नहीं हैं। फलतः उन सब की भाषाएँ भी एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् और स्वतंत्र हैं। इन पृथक् कुलों को ये विद्वान् आर्य, मंगोल, सेमेटिक, हेमेटिक, द्रविड़ आदि की संज्ञा देते हैं।

किन्तु भारतीय मत की घोषणा इसके विपरीत है, और इस्लामी तथा ख्रीष्ट मान्यता भी उसका अनुमोदन करती है। इस मत के अनुसार सारी मानव जाति एक ही मूल पुरुष मनु अथवा आदम की सन्तान हो कर मानव अथवा आदमी कहलायी। कालान्तर में विभिन्न भूखण्डों में फैलने, एक दूसरे से अलग-थलग होने और वहाँ की विशिष्ट जलवायु और संस्कारों से प्रभावित होने के फल-स्वरूप वह मानव जाति अनेक रूप, रंग, आकार और बोलियों में विभक्त होती गई। यह परिवर्तन लाखों वर्षों से चलते आ रहे हैं और इसलिए उन मानव-समूहों के रूप, रंग, आकार और बोलियों के अन्तर भी इतने सघन हो गये हैं कि ज्ञान की उपेक्षा करने वाले और केवल तर्क, अनुमान, प्रयोग, अनुसंधान आदि भौतिक साधनों को ही ज्ञान मान कर उन पर निर्भर रहने वाले पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके अनुवर्ती भारतीयों का भ्रमित होजाना स्वाभाविक ही है। यह बात इनसे ओझल हो जाती है कि कितना भी बड़ा वैषम्य इन जातियों के लक्षणों में दिखाई देता हो, उनकी आकृतियों और भाषाओं में कुछ ऐसे तथ्य लाखों वर्ष बाद भी झलकते हैं जो सारी मानव जाति को किसी पुरातन काल में एक मूल मानव का पितृत्व प्रदान करते हैं।

भारतीय वाङ्मय के सृष्टिक्रम-सम्बन्धी विशाल ज्ञानकोश को विस्तार-भय से किनारे भी रख दें, तो भी जन-साधारण की समझ में आने वाली

कुछ बातें तो हमारे मत की पुष्टि करती ही हैं। उदाहरण के लिए—
 (१) द्रविड़कुल की भाषाएँ आर्यकुल की भाषाओं से पाश्चात्य मत में—
 मूलतः पृथक् मानी गई हैं। किन्तु संस्कृत की वर्णाक्षरी, उनका वर्गीकरण
 तथा लिपि का बायें से दाहिने लिखा जाना उनके समान ही है। इसके
 विपरीत आर्यकुल की अनेक भाषाओं का खरोष्ठी लिपि में (दायें से बायें)
 लिखा जाना और वर्णों की संख्या, क्रम, वर्गीकरण आदि में बड़ा अन्तर
 है। (२) अरबी और संस्कृत की शब्दावली और लिपि में नाममात्र को
 भी मेल नहीं है, किन्तु उनकी व्याकरण में बड़ी समानता है, जबकि
 संस्कृत का अपने आर्यकुल ही की अन्य भाषाओं के व्याकरण से साम्य
 नगण्य सा है। (३) उत्तर-पश्चिम में सुदूरस्थ ईरान की अवेस्ता और
 गाथाओं की भाषा में असुर का अहुर उच्चारण है। बीच के पूरे आर्यावर्त
 में इसका अभाव होने के बाद उत्तर-पूर्व में असम प्रदेश में फिर दस को
 दह और गोसाईं को गोहाईं बोलते हैं। (४) नेपाल के आदिम निवासी
 आर्यकुल के रूप, आकृति से सर्वथा भिन्न हैं। किन्तु वहाँ कुछ ही समय
 से आबाद आर्यकुल के राज-परिवार तथा राना-परिवार की आकृतियों पर
 नेपाली प्रभाव प्रत्यक्ष है; आदि, आदि।

भारतीय भाषाएँ

अस्तु, जब मानव मात्र एक मनु (आदम) की सन्तान हैं और आज
 पृथ्वी पर उपलब्ध विविध भाषाओं और बोलियों का आदि-स्रोत एक है,
 तब भारत के निवासियों और भारतीय भाषाओं को मूलतः पृथक् मानना,
 उनका बुनियादी वर्गीकरण करना कहाँ तक समुचित है। जहाँ तक
 हिन्दी, गुरुमुखी, सिन्धी, राजस्थानी, ओड़िया, बंगला, असमिया, गुजराती,
 मराठी, कश्मीरी, मैथिली, नेपाली, सिंहली आदि भाषाओं, लिपियों
 अथवा बोलियों का सम्बन्ध है इन सब की वर्णमाला, शब्दावली, व्याकरण
 आदि में इतना अधिक साम्य है कि उनको एक परिवार से बाहर समझने
 की रत्ती भर गुंजाइश नहीं। ये सभी प्राचीन संस्कृत की पौत्री और
 भारतीय जनपदों में शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री आदि प्राकृत अथवा उनके
 अपभ्रंशों की पुत्रियाँ हैं। अलबत्ता भारत की दक्षिणी भाषाओं—मलयाळम,
 तेलुगु, कन्नड़ और तमिळु—का शेष भारतीय भाषाओं और लिपियों से
 भेद अधिक दूर का है।

किन्तु उर्दू को तो हिन्दी से पृथक् मानना ही भूल है। उसका तो
 हिन्दी से वही सम्बन्ध है जो एक रूह का दो कालिब से—एक प्राण का दो
 शरीर से। उर्दू-हिन्दी की व्याकरण, क्रियाओं के विभिन्न कारकों, कालों में
 प्रत्यय और रूप—ये एवं सब एक समान हैं। अरबी लिपि में लिखी जाने

अथवा अरबी-फ़ारसी भाषाओं के शब्दों के अधिक समाविष्ट होजाने से वह पृथक् भाषा नहीं हो सकती। कदाचित् लोगों को कम पता है कि नगरों में नहीं ग्रामों तक में नित्य बोली जाने वाली और हिन्दी कही जाने वाली भाषा में एक तिहाई से अधिक शब्द अरबी, फ़ारसी, तुर्की आदि के बार-बार बोले जाते हैं। उनमें ऐसे भी अरबी शब्दों की भरमार है जिनको लोग ठेठ हिन्दी की सम्पत्ति समझने लगे हैं, उनके अरबी-फ़ारसी होने की कल्पना भी नहीं करते। जैसे हलुवा, साइत (मुहूर्त), मेहरिया, हमेल, तरह, अन्दर, अगर, अचार, अजगर, अतलस, अबीर, अमीर, गरीब, अरक, मेवा, मल्लाह, मसखरा, मक्कर, लाला, लहास, स्याही, सद्दक, रुमाल आदि।

उद्देश्य

उपर्युक्त भाषाई पहलुवों के अलावा, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक दृष्टि से भी सारा देश परस्पर ऐसा गुथ गया है कि उसमें एकात्म-भाव के सर्वत्र दर्शन होते हैं। उसके प्रभाव की छाप सभी भाषाओं के साहित्य पर मौजूद है। इसलिए अपने-अपने क्षेत्र में विभिन्न लिपियों के फलते-फूलते रहने के बावजूद, यह जरूरी है कि राष्ट्र में सबसे अधिक सुपरिचित और व्याप्त देवनागरी लिपि के माध्यम से प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा और साहित्य को भारत के कोने कोने तक पहुँचाया जाय। भारत भूमि के हर कोने में प्रस्फुटित वाङ्मय को हर भारतवासी तक पहुँचाया जाय। लिपि और भाषा के सेतुकरण द्वारा सारे राष्ट्र का एकीकरण—यही इस 'भाषा-शिक्षण-सीरीज' का उद्देश्य है।

उद्देश्य-पूर्ति का माध्यम देवनागरी लिपि

आसेतु हिमालय, सारे देश के साहित्य, संस्कृति, आचार-विचार और सन्तों की वाणी को, किसी एक क्षेत्र अथवा समुदाय तक सीमित न रहने देकर, सारे भारतीयों की सामूहिक सम्पत्ति बनाना ही राष्ट्रीय एकीकरण की उपलब्धि है। इस्लामी हदीसों, फ़ारसी और उर्दू का विशाल गद्य-पद्य साहित्य, तमाम शायरों के दीवान, कुल्यात, मस्नवी और अदबी नावेल, नरसी मेहता के भजन, टैगोर की गीताञ्जलि, तिरुवल्लर का तिरुक्कुरल और सन्त नानक की अमर वाणी क्रमशः उत्तर प्रदेश, गुजरात, बंगाल, तमिळनाडु और पञ्जाब को ही नहीं, अपितु सारे देश को प्राण प्रदान करें, यह उनके अनुवाद मात्र के द्वारा संभव नहीं। जिस भाषारूपी सुधाभाण्ड से यह अमृत प्रवाहित हुए हैं उस भाषा के बोध के बिना वह प्राण सुलभ नहीं।

प्रत्यक्ष प्रणाली (डाइरेक्ट मेथड)

अस्तु, एक ही मार्ग है। देवनागरी लिपि, जो सारे देश में अपेक्षा-कृत सर्वाधिक व्याप्त है, भारतीय प्राचीन वाङ्मय की भाषा—देवभाषा संस्कृत की अपनी लिपि है, उसके माध्यम से हम क्षेत्रीय भाषा का आरंभिक ज्ञान प्राप्त करें। उसके किसी मान्य लोक-प्रिय ग्रंथ को चुन कर उसके अध्ययन द्वारा अपने अर्जित उपर्युक्त ज्ञान का अभ्यास किया जाय। धीरे-धीरे, अभ्यास के द्वारा उस भाषा में अभीष्ट ज्ञान सुलभ होगा।

अन्य लिपियों का विरोध नहीं

उपर्युक्त प्रयास से यह किसी प्रकार अभीष्ट नहीं कि भारत में प्रयुक्त अन्य लिपियों के शिक्षण अथवा प्रचार में ज़रा भी कमी हो। वह वैसे ही, वरन् अधिक फलती-फूलती रहें। किन्तु यह भी न भूलना चाहिए कि यदि हम इस देवनागरी लिप्यन्तरण की पद्धति से उस भाषा के अमूल्य साहित्य को देश में प्रसारित करने में उपेक्षा करते हैं, तो निश्चय ही गिने-चुने व्यक्तियों अथवा सीमित समुदाय को छोड़ कर सारे देश के जनसमुदाय से वह भाषा और साहित्य दूर होता जायगा।

उर्दू में फ़ारसी की इज़ाफ़त

उर्दू साहित्य को देवनागरी लिपि में लिप्यन्तरित करते समय एक 'इज़ाफ़त' के विवाद को बड़ा महत्त्व दिया जाता है। सामासिक पदों में फ़ारसी में इज़ाफ़त का प्रयोग होता है। दीवाने ग़ालिब—ग़ालिब का दीवान, तीरो कमान-तीर और कमान। इनमें क्रमशः तत्पुरुष और द्वन्द्व समास हैं। इनमें 'दीवाने' का 'ने' और 'तीरो' का 'रो' ह्रस्व बोले जाते हैं। उनको दीर्घ अर्थात् हिन्दी की मात्रा के अनुरूप बोलने पर 'दीवाने' का अर्थ 'पागल' अर्थात् 'पागल ग़ालिब' हो जायगा नकि 'ग़ालिब का दीवान'। इसकी विधि फ़ारसी में उनको 'ह्रस्व' बोलने की है।

इसको समझने के लिए अरबी भाषा का उदाहरण प्रस्तुत है। अरबी में 'कुर्आनुन् मजीदुन्' कर्मधारय समास है, अर्थात् 'पवित्र कुर्आन'। फ़ारसी वालों के सामने इसको बोलने के लिए दो विकल्प थे। या तो वह अरबी शैली पर 'कुर्आनुन् मजीदुन्' कहते, या अपनी निजी फ़ारसी-शैली पर 'कुर्आनि मजीद' कहते जिसमें 'ने' का ह्रस्व उच्चारण होता है।

यही दो विकल्प हिन्दी और उर्दू वालों के लिए हैं। या तो अरबी की पद्धति पर 'कुर्आनुन् मजीदुन्' लिखें अथवा हिन्दोस्तानी सामासिक पद्धति पर 'कुर्आनमजीद' लिखें—इसमें दोनों शब्द परस्पर मिला कर

लिखे जायँगे। इसी प्रकार हिन्दोस्तानी आलिम बोलते भी हैं। अस्तु, बीच में तीसरी भाषा 'फ़ारसी' की पद्धति इस्तिआर करने की ज़रूरत नहीं।

कहने का प्रयोजन यह कि या तो अरबी को अरबी और फ़ारसी को फ़ारसी शैली में लिखें-बोलें, या फिर अपने हिन्दोस्तानी तरीक़े पर बोलें, जैसे कि फ़ारसी वाले अपनी फ़ारसी शैली में अरबी को बोलते हैं। या तो अरबी के ढंग पर 'कुर्आनुन् मजीदुन्' लिखिए, या हिन्दोस्तानी ढंग पर 'कुर्आन-मजीद'; न कि फ़ारसी का तीसरा माध्यम 'कुर्आनि मजीद' ग्रहण करें।

ह्रस्व 'अ' और ह्रस्व 'ओ' का देवनागरी स्वरूप

यह तो 'अरबी' के देवनागरी-लिप्यन्तरण की बात है। अब उसी सिद्धांत पर फ़ारसी शब्दों के सामासिक पदों को भी लिखिए। या तो हिन्दोस्तानी ढंग पर 'दीवान-ग़ालिब' लिखिए, और उसको ऊपर दी गई दलील के अनुसार सही न मानने का कोई कारण नहीं; और या फिर 'फ़ारसी प्रयोग' होने के नाते फ़ारसी ढंग पर 'दीवाने ग़ालिब' लिखिए।

अब 'दीवाने ग़ालिब' के 'ने' और 'तीरो कमान' के 'रो' को ह्रस्व कैसे लिखा जाय, यह समस्या कठिन नहीं अति सरल है। दक्षिणी भाषाओं में भी 'ह्रस्व ए' और 'ह्रस्व ओ' के उच्चारण वर्तमान हैं। देवनागरी लिप्यन्तरण में दीर्घ को 'ए', 'ओ' और ह्रस्व को 'अ', 'इ' लिखा जाता है। फ़ारसी शैली पर ही लिखने के इच्छुकों को 'दीवाने ग़ालिब' और 'तीराँ कमान' लिखना चाहिए।

इस प्रकार सार यह है कि उर्दू साहित्य को सारे देश में अक्षुण्ण और व्यापक बनाने और राष्ट्रभाषा को भी अधिक परिपुष्टि देने के लिए यह ज़रूरी है कि उर्दू का समग्र मूल्यवान् साहित्य देवनागरी में लिप्यन्तरित कर दिया जाय। जय भारत !

शरीफ़ज़ादः (आर्यपुत्र)

'शरीफ़ज़ादः' चरित्र को समुन्नत, निष्क्रिय को सक्रिय, नैतिक, साहसी और कर्तव्यनिष्ठ बनानेवाला एक मनोरञ्जक उपन्यास है। इसके रचयिता डॉक्टर मिर्ज़ा मुहम्मद हादी उपनाम 'रुस्वा' स्वयं असाधारण प्रतिभाशाली, स्वावलम्बी, अहर्निश श्रमशील और अपने समय के अजीबों-ग़रीब व्यक्ति हुए हैं। 'उमराव जान अदा' उनकी सर्वप्रसिद्ध रचना है। विशेषता यह है कि उनके उपन्यासों में नायक का चित्रण प्रायः उनका अपना जीवनचरित्र है। पुराने चलन पर बचपन से ही विवाह और परिवारदारी का बोझ, अपनी शिक्षा चलाना तो दूर नित्य की गुज़र-बसर के लाले—इस अवस्था में धैर्य के साथ जीविका के लिए छोटी-छोटी

ट्यूशनो पर निर्वाह करते हुए अध्ययन को जारी रख कर डाक्टरेट और इंजीनियरी के सम्मानित पद पर उनका पहुँचना ! अनेक कलों की ईजाद, मिस्त्रीगीरी, लुहारी, काश्तकारी आदि में सिद्धहस्त, गद्य-पद्य के रचनात्मक साहित्यकार, परिवार को सदैव सीधी राह पर ले जानेवाले, दबे-दबाये पर तरसखाने वाले—उसको उभार कर जीवन प्रदान करनेवाले, साथ ही समाज के अवाञ्छित तत्वों के कटु और निर्भय आलोचक—कहाँ तक कहा जाय रुस्वा साहब के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ! शिल्प-कला-साहित्य, कोई क्षेत्र नहीं जहाँ मिर्जा रुस्वा का प्रवेश न हो, अथवा उसकी सिद्धि को उन्होंने चरम सीमा तक न पहुँचा दिया हो ।

‘शरीफ़ज़ादः’ के आदर्श नायक मिर्जा आबिदहुसैन की सवानःउम्री (जीवनी) मिर्जा रुस्वा की अपनी सवानःउम्री है । इस उपन्यास के द्वारा समाज की मौजूदा दुर्बलताओं पर कुठाराघात ही नहीं पथनिर्देश भी है । आजकल के नवयुवकों में व्याप्त शारीरिक श्रम में लज्जा, प्रतिष्ठा का मर्ज और चरित्र के दौर्बल्य की निन्दा न करके उनके आत्मबल को बढ़ाते हुए उन्हें नागरिक बनाने का सफल प्रयास है । रुस्वा साहब का कहना है कि यह धारणा ग़लत है कि ‘प्रत्येक व्यक्ति की जन्मजात और सहज बुद्धि अलग-अलग होती है; प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रत्येक काम में सफलता सम्भव नहीं’ । उनका दृढ़ मत है कि सहज बुद्धि परिवेश (माहौल) से बन जाया करती है; अन्यथा संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं जिसकी सफलता मनुष्य के लिए, कमर कस लेने पर, दुरूह अथवा असम्भव हो । और यह सब उपदेश मात्र नहीं, मिर्जा रुस्वा ने अपनी पुस्तकों में अपने को ही नाम बदलकर नायक स्थापित कर नवयुवकों के लिए एक ऐतिहासिक आदर्श उपस्थित किया है ।

शरीफ़ज़ादः की भाषा

‘शरीफ़ज़ादः’ की भाषा उर्दू है । इसमें सरल तथा विलष्ट दोनों प्रकार के उर्दू के नमूने मौजूद हैं । पाठक रोज़मरः और साहित्यिक—दोनों प्रकार की सरस उर्दू भाषा का आनन्द लें । उपन्यास जैसे का तैसा देवनागरी लिपि में लिप्यंतरित है । अलबत्ता इज़ाफ़त, और ह्रस्व तथा दीर्घ और ओ की मात्राओं का, ऊपर दी हुई पद्धति पर, पुस्तक में सर्वत्र निर्वाह नहीं हो सका है । कारण कि क्या शैली अपनाई जाय, इसका निश्चित मत शुरू में निर्धारित न हो सका था । इस कमी को स्पष्ट स्वीकार करते हुए पाठकों से निवेदन है कि इस लिप्यन्तरण को प्रयोगमात्र मानकर शरीफ़ज़ादः के पुनर्संस्करण तथा आगे अपनाये जाने वाले अन्य उर्दू के लिप्यन्तरणों की प्रतीक्षा करें ।

—सम्पादक

तोड़ के उससे जोड़ो किससे
उस वाली^१ पर ध्यान जमाओ
नाम जपो बेखौफ खुदा का
तुम पर लुत्फ प्रभू का हो
जिसको मालिक आप बचाए
नाम जपो हक़ नाम जपो
उसकी चिन्ता दूर हो सारी
रुतबा उसका किसने पाया
सर पर बीर बहादुर गुरु
काम हो फिर सब पूरे 'नानक'

दूर किधर को जाओगे
नाम से मुक्ती पाओगे
डर सब दूर तुम्हारा हो
सब रोग मिटे छुटकारा हो
वह क्योंकर दुख पाता है
दुख जाता है सुख आता है
खौफ न कुछ पिन्दार^२ रहे
वह सब का सरदार रहे
जब अपना साया डालेगा
हर मक़सद^३ को पा लेगा ॥७॥

ति पूरी अमृतु जाकी दृसटि
रन कमल जाके अनूप
नु सेवा सेवकु परवानु
जसु मनि बसै सु होत निहालु
मर भए अमरापदु पाइआ

दरसनु पेखत उधरत सृसटि ।
सफल दरसनु सुंदर हरि रूप ।
अंतरजामी पुरखु प्रधानु ।
ताकै निकटि न आवत कालु ।
साध संगि नानक हरि धिआइआ ॥८॥

आक़िल कामिल ज्ञात है उसकी
उसका दर्शन करने से
ज्ञात उसकी लासानी है
सुन्दर उसका दर्शन है
सेवा भी बा-बरकत^४ है
सब में वह परधान भी है
जिसके मन में रब बसता है
मौत भी उसके पास न फटके
साध की संगत में जो 'नानक'
लाफ़ानी^५ हो जाता है

नैन में अमरित न्यारा है
दुनिया का पार उतारा है
और पाँव कमल से प्यारे हैं
दर्शन ने काम सवारि हैं
शुभ उसकी खास गुलामी है
वह सब का अन्तरजामी है
वह आनन्द मनायेगा
जुग जुग जीता जायेगा
रब में ध्यान लगाता है
लाफ़ानी रुतबा पाता है ॥८॥

१ संतक

२ घमण्ड (अहंकार)

३ उद्देश्य, लक्ष्य, इच्छा

४ बढ़ती वाली

५ अनश्वर ।

सलोक

गिआन अंजनु गुरि दीआ
 अगिआन अंधेर बिनासु ॥
 हरि किरपा ते संत भेटिआ
 नानक मनि परगसु ॥ १ ॥

गुरु ने बख्शा ज्ञान का वह सुरमा पुरनूर^१
 जिससे सब अज्ञान का हुआ अंधेरा दूर
 रब का जिस पर लुत्फ^२ हो संत की सुहृत् पाए
 'नानक' मन में नूर हो दिल रोशन हो जाए

असटपदी २३

संत संगि अंतरि प्रभु डीठा नामु प्रभु का लागा मीठा
 सगल समिग्री एकसु घट माहि अनिक रंग नाना दृसटाहि
 नउनिधि अमृतु प्रभ का नामु देही महि इसका बिस्रामु
 सुन समाधि अनहत तह नाद कहनु न जाई अचरज बिसमादी
 तिनि देखिआ जिसु आपि दिखाए नानक तिसु जन सोझी पाए ॥ १ ॥

सन्तों की संगत में रह कर रब को मन में पाया है
 मीठा-मीठा नाम खुदा का उससे लुत्फ^३ उठाया है
 रंग विरंगी दुनिया जिसकी सूरत न्यारी न्यारी है
 एक खुदा बस एक खुदा के मन में देखो सारी है
 नाम खुदा का नौ गंजीने^४ खालिस अमरित रब का नाम
 उसके तन में नाम बसेरा उसके मन में हो आराम
 उस खामोश समाधी में अनहद झन्कार समाती है
 वह कैफ़ीयत कौन बताये खुद हैरत गुम हो जाती है
 उसके दरशन पायेगा वह जिसको आप दिखायेगा
 जिसको खुद समझाये 'नानक' सूझ वही कुछ पायेगा ॥

अंतरि सो बाहरि अनंत घटि घटि बिआपि रहिआ भगवंत ।
नि माहि आकास पइआल सरब लोक पूरन प्रतिपाल ।
तिनि परबति है पारब्रह्मु जैसी आगिआ तैसा करमु ।
ण पाणी बैसंतर माहि चारि कुंट दहदिसे समाहि ।
ते भिन नही को ठाउ गुरप्रसादि नानक सुखु पाउ ॥ २ ॥

अन्दर भी बेअन्त^१ वही है बाहर भी बेअन्त वही
सब के दिल में आप समाया मन में है भगवन्त वही
उसका जलवा^२ धरती में आकाश में है पाताल में है
सारे जग को पाल रहा है जो जो जिस जिस हाल में है
बन में वह पर्वत में वह तिनके में वह रब आली है
जो-जो होता रहता है कब हुक्म से उसके खाली है
पानी आग हवा इन सब में अपना आप रचाता है
चारों खूंट में उसका जलवा हर सू आप समाता है
हर जाये वह हाज़िर नाज़िर उसको सब में पाओगे
‘नानक’ गुरु की रहमत हो तब आप सुखी हो जाओगे ॥ २ ॥

मु पुरान सिमृति महि देखु ससी अर सूर नख्यत्र महि एकु ।
दी प्रभ की सभु को बोलै आपि अडोलु न कबहू डोलै ।
कला करि खेलै खेल मोलि न पाईऐ गुणह अमोल ।
जोति महि जा की जोति धारि रहिओ सुआमि ओति पोति ।
परसादि भरम का नासु नानक तिन महि एहु बिसासु ॥ ३ ॥

वेद पुरान स्मृतियों को हमने देखा भाला है
सूरज चाँद सितारों में उस रब का नूर उजाला है
दुनिया में जो बोलेगा सो उसकी बोली बोलेगा
क्रायम है वह दायम है डोला है और न डोलेगा
खेल वह खेले हर सूरत में खेल भी उसका न्यारा है
उसके गुन अनमोल हैं सारे मोल का किसको यारा^३ है
नूर उसका हर नूर में है वह आप है नूर जमाने का
ताना उसका बाना उसका मालिक ताने बाने का

गुरु की रहमत जिस दम होगी
गुरु की रहमत जिस दम होगी

शक जाये ईकान^१ मिले
'नानक' यह ईमान मिले

संत जना का पेखनु सभु ब्रहम
संत जना सुनहि सुभ बचन
जिनि जाता तिसकी इह रहत
जो जो होइ सोई सुखु मानै
अंतरि बसे बाहरि भी ओही

संत जना कै हिरदै सभि
सरब बिआपी राम संगि
सति बचन साधू सभि
करन करावनहार प्रभु
नानक दरसन देखि सभ मोहीन

सन्तों की आखों से देखो
सन्तों के हिरदै में देखो
सन्तों के कानों में हरफ जो
सन्त रचे हैं रब में जो सब
जिसने रब को पहचाना
सच्चे बोल सब उसके हैं
दुनिया में जो होता है
हर कारज का करने वाला
अन्दर जलवा बाहर जलवा
मनमोहन का दर्शन पाकर

सब में रब का नूर मिले कै
धरम का नूर जहूर^२ मिले
आया अच्छा आया जो
जग में आप समाया सब
वह सच में रहता सहता सारी
जो कहता है सच कहता आप
वह उसको अच्छा जानेग जग
अपने रब को मानेग उसके
उसके सब नज़ारे^३ सब
'नानक' सब मन हारे जो

आपि सति कीआ सभु सति
तिसु भावै ता करे बिसथार
अनिक कला लखी नह जाइ
कवन निकटि कवन कहीऐ दूरि
अंतरगति जिसु आपि जनाए

तिसु प्रभ ते सगली उत आयें
तिसु भावै ता एक ज्ञात
जिसु भावै तिसु लए मि
आपे आपि आप भर भल
नानक तिसु जन आपि बुझाए स

सच्चा है रब सच्चा है
दुनिया पैदा करने वाला
जब तक उसकी मरजी होगी
फिर जब उसकी मरजी हो
ताकत लामहदूद^४ है उसकी
जिसको उसका मन चाहे खुद

जो करता है सब सच्चा है ग
आप वही रब सच्चा है ग
फैला यह संसार रहेजो
बस खाली एक ओंकार रहेजो लो
कब लिखने में आये वह अच्छ
अपने साथ मिलाये वह अपने

किसको समझें पास है यह और किसको जानें दूर है वह
अपने में वह आप समाया हर शै^१ में भरपूर है वह
जिसको मन के अन्दर अपनी हस्ती आप जतायेगा
राज^२ वही समझेगा 'नानक' भेद वही कुछ पायेगा ॥५॥

बूत आपि वरतारा सरब नैन आपि पेखनहारा ।
जल समग्री जाका तना आपन जसु आप ही सुना ।
न जानु इकु खेलु बनाइआ आगिआकारी कीनी माइआ ।
कै मधि अलिपतो रहै जो किछु कहणा सु आपे कहै ।
गथा आवै आगिआ जाइ नानक जा भावै ता लए समाइ ॥६॥

जो फ़ितरत^३ के अनसर^४ हैं हर अनसर में वह आप समाये
सब की वह आँखों से झाँके आप ही देखे आप दिखाये
सारी दुनिया उसका तन है उसका रूप निराला है
आप करे तारीफ़ वह अपनी आप ही सुनने वाला है
जग में आना जग से जाना उसने खेल बनाया है
उसके एक इशारे पर यह चलती सारी माया है
सब में वह मौजूद भी है और दूर भी सबसे रहता है
जो कुछ हम तुम कहते हैं खुद कहता है खुद कहता है
आयें उसकी मरजी से हम जायें उसकी मरजी से
जात में उसकी 'नानक' आन समायें उसकी मरजी से ॥६॥

लते होइ सु नाही बुरा ओरै कहहु किनै कछु करा ।
रूपि भला करतूति अति नीकी आपे जानै अपने जीकी ।
पि साचु धारी सभ साचु ओति पोति आपन संगि राचु ।
की गति मिति कही न जाइ दूसर होइ त सोझी पाइ ।
सका कीआ सभु परवानु गुरप्रसादि नानक इहु जानु ॥ ७ ॥

जो कुछ उससे होता है वह काम बुरा कब होता है
बोलो और किया है किसने आप करे तब होता है
अच्छा है रब अच्छा है काम अच्छे हैं जो करता है
अपने मन की आप ही जाने जो चाहे सो करता है

सच्चा आप वह सच्चा सब कुछ
 ज्ञात में अपनी आप रचाया
 उसकी हालत कौन बताये
 उससे बाहर कोई अगर हो
 जो कुछ भी वह करता है
 'नानक' गुरु की रहमत से

दुनिया आप सहारा है
 ताना बाना सारा है
 उसका अन्त न सूझेगा
 फिर वह उसकी वृद्धेगा
 मंजूर समझ मक्कबूल^२ समझ
 तू बात यही माकूल^३ समझ

जो जानै तिसु सदा सुखु होइ आपि मिलाइ लए प्रभु
 ओहु धनवंतु कुलवंतु पतिवंतु जीलनु मुक्ति जिसु रिदै भ
 धनु धनु धनु जनु आइआ जिसु प्रसादि सभु जगतु तरा
 जन आवन का इहै सुआउ जन कै संगि चिति आवै
 आपि मुकतु मुकतु करै संसार,

नानक तिसु जन कउ सदा नमसकारु । सि

जिसने उसको जाना है
 आप खुदा ने उस प्यारे को
 जिस दिल में भगवान बसे
 ऊँचे घर का धनवाला हो
 धन-धन भाग वह आया है
 जिसकी बख्शिश रहमत ने कुल
 नाम खुदा का रोशन करने
 जिसने उसकी संगत पाई
 मुक्त है खुद भी मुक्ती पायें
 'नानक' उस सब वाले को

सुख चैन उसी ने पाया
 अपने साथ मिलाया
 बस जीते जी वह मुक्ती पायें
 इज्जत शान बढ़ाई पायें
 लो धन-धन भाग वह आया
 जग को पार लगाया
 इस दुनिया में आया
 दिल में नाम बसाया
 उससे खास और आम सदा
 परनाम सदा परनाम सदा

सलोक

पूरा प्रभु आराधिआ
पूरा जा का नाउ ॥
नानक पूरा पाइआ
पूरे के गुन गाउ ॥ १ ॥

‘कामिल’ रब का नाम है उसको सीस झुकाऊँ
‘नानक’ ‘कामिल’ मिल गया ‘कामिल’ के गुन गाऊँ

असटपदी २४

रे गुर का सुनि उपदेसु पारब्रह्म नु निकटि करि पेखु ।
सि सासि सिमरहु गोबिंद मन अंतर की उतरै चिद ।
स अनित तिआगहु तरंग संत जना की धूरि मन मंग ।
पु छोडि बेनती करहु साध संगि अग्नि सागर तरहु ।
रि धन के भरि लेहु भंडार नानक गुर पूरे नमसकार ॥ १ ॥

कामिल गुरु की बात सुनो उपदेश वह तुमसे कहता है
पाक प्रभू परमेश्वर हरदम पास तुम्हारे रहता है
हरदम रब को याद करो हक नाम से दिल मसरूँ करो
मन की चिन्ता दूर करो यँ मन की चिन्ता दूर करो
माँजें तेज हवस की छोड़ी करती हैं दिलगीर यही
सन्तों के कदमों की माँगो धूल कि है अकसीर यही
रब से अपनी हाजत माँगो दूर अपना पिन्दार करो
साधों की संगत में तैरो आग का दरया पार करो
ले लेकर रूहानी दौलत माल खजाने भरते जाओ
‘नानक’ कामिल गुरु को तुम परनाम हमेशा करते जाओ ॥ १ ॥

खेम कुसल सहज आनंद साध संगि भजु परमानंद ।
नरक निवारि उधारहु जीउ गुन गोबिंद अमृत रसु पीउ ।

१ पूर्ण २ प्रफुल्लित ३ जालसा ४ दुखित ५ महौषध ६ कामना
७ अहंकार ८ आत्मिक ।

चिति चितवहु नाराइण एक एक रूप जा के रंग अने
गोपाल दामोदर दीन दइआल दुख भंजन पूरन किरपा
सिमरि सिमरि नामु बारंबार नानक जीअ का इहै आधार ॥ २

चैन करो तुम ऐश मनाओ सुख पाओ आनन्द रहो
सन्तों की संगत में रब का नाम जपो खुरसंद^१ रहो
अमरित रस है हृद्^२ खुदा की यह अमरित तुम पीते जाओ
मुक्ती पाये रूह^३ तुम्हारी दोजख के नजदीक न आओ
दिल से उसको याद करो नारायन एक तुम्हारा है
रूप है उसका एक फ़क़त^४ जो रंगारंग पसारा^५ है
उसकी मेहर^६ गरीबों पर दामोदर वह गोपाल है वह
सब के दुख वह दूर करे रहमत^७ में ऐन कमाल है वह
सुमरन कर लो सुमरन कर लो नाम जपो हर बार यही
जी का है आधार यह 'नानक' जी का है आधार यही ॥

उतम सलोक साध के बचन अमुलीक लाल एहि रत
सुनत कमावत होत उधार आपि तरै लोकह निसता
सफल जीवनु सफलु ताका संगु जा कै मनि लागा हरि रं
जै जै सबदु अनाहदु बाजै सुनि सुनि अनद करे प्रभु गा
प्रगटे गुपाल महांत कै माथे नानक उधरे तिन कै साथे ॥ ३

पाक श्लोकों जैसे मन्तर तू साधों के बोल समझ
बेशबहा^१ ये हीरे हैं तू लाल उन्हें अनमोल समझ
सुन-सुन कर जो लाये अमल में आखिर मुक्ती पायेगा
पार वह खुद भी जायेगा औरों को पार लगायेगा
अच्छा उसका जीना है और अच्छी उसकी संगत है
जो यकरंग हो ऐसा जिसके मन पर रब की रंगत है
जै जै की आवाज हो गैबी^२ नगमे^३ सुनता जाये वह
सुन सुन कर खुश हो हो कर उस दाता के गुन गाये वह
जाहिर जिसके माथे रब का नुरानी चमकारा हो
उसका साथी हो जा 'नानक' फिर तेरा छुटकारा हो ॥

१ झुश २ स्तुति ३ आत्मा ४ एक मात्र ५ फैलाव ६ दया ७ श्रम
८ दिव्य ९ मधुर संगीत ।

व१ट१ अफ़ज़ल जिहाद^१

हज़ूत अबू सअीद(२०) खुद्री से रिवायत है कि नबीसल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, सबसे अफ़ज़ल जिहाद जाबिर सुल्तान^२ के मुँह पर इन्साफ़ की बात कहना है। [अबूदावूद-तिर्मिज़ी]

हज़ूत तारिक बिन शिहाबिल्बजली से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से एक आदमी ने ऐसे वक्त्र में सवाल किया कि आप रकाब पर पाँव रख चुके थे। पूछा, या रसूलुल्लाह! कौन सा जिहाद अफ़ज़ल है। फ़रमाया, इन्साफ़ की बात सरकश बादशाह^३ के मुँह पर कहना। [नसाई]

व१ट२ बनी इसराईल की पहली ख़राबी

हज़ूत इब्नि मसऊद (२०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, पहली ख़राबी जो बनी इसराईल में पैदा हुई वह यह कि कोई किसी बुरे आदमी से मिलता और कहता कि अल्लाह से डरो और जो कुछ तुम करते हो उसको छोड़ दो यह तुम्हारे लिये जाइज़ नहीं। फिर जब दूसरे दिन मिलता और उसको उसी हालत में पाता तो फिर उनको न रोकता, और (उलटे) उनका हमप्याला हो जाता^४। पस जब वह यह करने लगे तो अल्लाह तआला ने उनके दिलों को यकसाँ कर दिया। फिर फ़रमाया—

लुअ्मिनल्लजीन कफ़रू मिम्बनी^१ अिस्रा'लील अला लिसानि दावूद व ओसब्नि मर्यम त जालिक बिमा असव्व कानू यज़तदून (७८) कानू ला यतनाहौन अम्मुन्करिन् फ़अलूहु त लबिअ्स मा कानू यफ़अलून (७९) तरा कसीरम्मिन्हुम् यतवल्लौनल्लजीन कफ़रू त लबिअ्स मा क़द्दमत् लहुम् अन्फुसुहुम् अन् सख़ितल्लाहु अलैहिम् व फ़िल्अजाबिहुम् ख़ालिदून (८०) व लौ कानू युअ्मिन्न बिल्लाहि वन्नबिअिय व मा^२ अुन्ज़िल अिलैहि मत्तख़जूहुम् औलिया^३ अ व लाकिन्न कसीरम्मिन्हुम् फ़ासिकून (८१)

१ सर्वोत्कृष्ट धर्मयुद्ध (या उत्सर्ग) २ अत्याचारी शासक ३ उदण्ड, निरंकुश नरेश।

४ यानी उनके खाने-पीने में शरीक होता और उनके साथ बैठता-उठता।

बनी इसराईल के उन लोगों पर लानत की गयी, जिन्होंने कुफ़ किया। हज़ूत दावूद (अ०) और ह० आसा (अ०) की ज़बान पर इस वजह से कि वह नाफ़रमानी करते थे और हृद से बढ़ने वाले थे, एक दूसरे को बुराई से नहीं रोकते थे जो उन्होंने की। बुरी बात थी जो वह करते थे। तुम उनमें बहुतों को देखते हो कि वह उन लोगों की सरपरस्ती करते हैं जिन्होंने कुफ़ किया। बुरी बात है जो उनके नफ़सों ने उनके लिए भेजा। अल्लाह उन पर नाराज़ हुआ और वह हमेशा अज़ाब में रहेंगे। अगर वह अल्लाह पर और उसके रसूल पर और जो उनकी तरफ़ उतारा गया है ईमान ले आते तो उनको दोस्त न बनाते लेकिन उनमें बहुत फ़ासिक़ हैं।

[सू० माअिदः, रू० ११ आ० ७८-८१]

फिर आपने फ़रमाया, मैं तुमको ताकीद करता हूँ कि तुम उनको ज़रूर नेकी का हुक्म दो और बुराई से रोको। और ज़ालिमों के हाथ पकड़ लो। उनको ज़बरदस्ती हक़ पर रोको और उनको हक़ पर मजबूर करो। वरना अल्लाह तआला तुम लोगों के दिलों को यकसाँ कर देगा। और तुम पर लानत करेगा जैसे उन पर की। [अबू दावूद, तिर्मिज़ी]

१८३ अपना राहँ-रास्त पर होना काफ़ी नहीं

हज़ूत अबूबक्र सिदीक़ (र०) ने फ़रमाया, ऐ लोगो, तुम इस आयत को पढ़ते हो:—

या^१ अय्युहल्लज़ीन आमनू अलैकुम् अन्फुसकुम् ॥ ला यज़ुरुकुम् मन् ज़लल अिजहूतदैतुम् ॥

ऐ ईमानवालो ! तुम अपनी फ़िक़्र करो, तुमको नुक़सान न पहुँचायेगा जो गुमराह हो, जबकि तुम हिदायत पा चुके हो।

[सू० माअिदः, रू० १४ आ० १०५]

और मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को फ़रमाते सुना है कि जब लोग जुल्म करते देखें तो उनके हाथ पकड़ लें, वरना करीब है कि अल्लाह तआला अपने अज़ाब को आम कर दे। [तिर्मिज़ी, निसाई]

१ दुराचारी।

१ यानी तब्लीग़ और कोशिश व जिद्दोज़हद के बाद भी अगर कोई नहीं मानता तो फिर तुम ज़िम्मेदार नहीं हो।

खुदरा फ़ज़ीहत दीगराँ रा नसीहत^१

आयात

अतअमूरुनन्नास बिल्बर्रि व तन्सौन अन्फुसकुम् व अन्तुम्
तत्लूनल्किताब अफ़ला तऽक़िलून ।

तुम दूसरों को नेकी का हुक्म देते हो और अपने को भूल जाते हो,
तुम किताब पढ़ते हो क्या इतना नहीं समझते ।

[सू० बकर २० ५ आ० ४४]

या^१ अय्युहल्लजीन आमनू लिम तकूलून मा^१ला तफ़अलून (२)
कबुर मक्तन् अिन्दल्लाहि अन् तकूलू मा ला तफ़अलून (३) ।

ऐ ईमान वालो ! वह बात क्यों कहते हो जो खुद नहीं करते ।
अल्लाह को इससे बड़ी नफ़रत है कि कहो और न करो ।

[सू० सफ़िफ़, २० १ आ० २-३]

व मा^१ अुरीदु अन् अुखालिफ़कुम् अिला मा^१ अन्हाकुम् अन्हु... ।

(अल्लाह तआला ने हज़रत शुअैब की तरफ़ से फ़रमाया) कि मैं
हटकर वही न करने लगूंगा जिससे मैं तुमको रोकता हूँ ।

[सू० हूद, २० ८ आ० ८८]

अह्दादीस

ब^१ट्ट दूसरों को नसीहत करने और खुद न करने का अज़ाब

हज़रत उसामः बिन जैद (२०) से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह
सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को फ़रमाते हुए सुना है कि एक आदमी क्रियामत
के दिन लाया जायेगा और आग में डाल दिया जायेगा । उसकी अन्तडियाँ
निकल पड़ेंगी और उनको इस तरह घुमाया जायेगा जैसे चक्की के गिर्द
गधा घूमता है । दोज़ख वाले उसके गिर्द जमा होंगे और कहेंगे ऐ फ़लाँ !
तू तो लोगों को नेकी का हुक्म देता था और बुराई से रोकता था । वह
कहेगा, हाँ, मैं लोगों को तो नेकी का हुक्म देता था लेकिन खुद नेक काम
नहीं करता था और दूसरों को बुराई से मना करता था मगर मैं खुद उस
बुराई का मुरतकिब^२ होता था ।

[बुख़ारी-मुस्लिम]

अमानत^१ की अदायगी

आयात

.....अब्नल्लाह यअमुरुकुम् अन् तुअद्दुल्अमानाति अिला^१
अह्लिहा..... ।

बेशक अल्लाह तुमको हुक्म देता है कि अमानतें उनके मालिकों की तरफ अदा करो ।

[सू० निसा, रू० ८ आ० ५८]

अब्ना अरज़नल्अमानत अलस्समावाति वल्अज़्ज़ि वल्जिबालि
फ़अ बैन अय्यहूमिल्नाहा व अश्फ़क़न् मिन्हा व हमल हल्-
अन्सानु त अन्नहु कान जलूमन् जहूलन् ला (७२) ।

हमने अमानत आसमान पर ज़मीन और पहाड़ पर पेश की, मगर उन सबने इन्कार किया और डरे । लेकिन इन्सान ने इसको उठा लिया; वह जुल्म करने वाला नादान है ।

[सू० अहज़ाबि, रू० ६ आ० ७२]

अह्दादीस

बट्टे मुनाफ़िक^२ की तीन निशानियाँ हैं

हज़रत अबू हुदैर: (२०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया मुनाफ़िक की तीन निशानियाँ^३ हैं । जब बात कहे झूठ बोले, जब वादा करे पूरा न करे, जब अमानत रखवाई जाये ख़ियानत^४ करे ।

[बुख़ारी-मुस्लिम]

बट्टे अमानत का उठ जाना

हज़रत हुज़ैफ़: (२०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने हमसे दो बातें इरशाद फ़रमायीं, उनमें एक मैंने देख ली । दूसरी का मुन्तज़िर^५ हूँ । हमसे आपने फ़रमाया कि अमानत

लोगों के दिलों की जड़ में उतरी[†] फिर कुरआन उतरा, उन्होंने कुरआन और सुन्नत[‡] का अिल्म हासिल किया। फिर आपने हमसे अमानत के उठ जाने के मुतअल्लिक़ फ़रमाया कि आदमी एक नींद लेगा और अमानत उसके दिल से उठा ली जायेगी। और उसका असर निशान की तरह रह जायेगा। फिर एक नींद सोयेगा और अमानत उसके दिल से उठा ली जायेगी और उसका असर छाले की तरह रहेगा। जैसे तुम्हारे पैर पर चिन्गारी पड़ जाये। उससे छाला पड़ जाये। तुम उसको उभरा हुआ देखो हालाँकि उसमें कुछ नहीं। फिर आपने एक कंकरी अपने पैर पर लुढ़का कर दिखाया और फ़रमाया सुबह को लोग ख़रीद फ़रोख़्त में लगे होंगे और कोई न होगा जो अमानतों को अदा करे। यहाँ तक कि कहा जायेगा कि फ़लाँ महिला में एक आदमी अमानतदार है। और बाज़ आदमी के लिए कहा जायेगा किस क़दर मज़बूत मुहज़ज़ब और अक़ल-मन्द है और उसके दिल में ज़रूर भर भी ईमान न होगा। और मुझपर ऐसा ज़माना आया है कि मैं हर किसी के साथ ख़रीद व फ़रोख़्त करता था; अगर वह मुसलमान है तो मुझ पर उसका दीन उसको पलटा देगा[§] और अगर यहूदी नसरानी है तो उसका चौधरी उसको मुझपर पलटा देगा[§] और आज मैं ख़रीद व फ़रोख़्त नहीं कर सकता मगर तुम लोगों में फ़लाँ और फ़लाँ से। [बुख़ारी-मुस्लिम]

बैट ६ कियामत का मन्ज़र^२

हज़त हुज़ैफ़: (२०) और अबू हु़रैर: (२०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया अल्लाह तबारक व तआला लोगों को जमा करेगा। मुसलमान खड़े होंगे यहाँ तक कि जन्नत लाई जायेगी। लोग हज़त आदम (अ०) के पास आयेंगे और कहेंगे ऐ हमारे बाप! हमारे लिए जन्नत खुलवाइए। हज़त आदम (अ०) कहेंगे कि तुम लोग अपने बाप की ख़ता की वजह से निकाले गये हो, मैं इसका मर्दे-मैदान^३ नहीं, तुम मेरे बेटे इब्राहीम (अ०) के

† यानी शरीअत^४ के आने से पहले दिलों में तलब, इहसास और शराफ़त पैदा हुई ताकि शरीअत के कुबूल करने की अहिल्लियत^५ पैदा हो।

§ यानी उसको अपने दीन का ख़याल आयेगा और खुदा के डर से मेरा हक़ दे देगा।

§ यानी उसके ज़रीये से मेरा मुतालबा^६ वसूल हो जायेगा

१ पैग़म्बर के पद-चिह्नों पर अनुकरण २ दृश्य ३ महारथी ४ धर्मशास्त्र

५ योग्यता, पात्रता ६ अधिकार, हक़।

पास जाओ, वह सब हज़रत इब्राहीम (अ) के पास आयेंगे। हज़रत इब्राहीम (अ०) कहेंगे मैं इसका मर्दे मैदान नहीं। मेरी दोस्ती तो पसे पर्दह^१ ही है। तुम मूसा (अ०) के पास जाओ। जिन्हें अल्लाह तआला ने बेवास्ता शरफ़े कलाम^२ से मुशरफ़^३ फ़रमाया। वह हज़रत मूसा (अ०) के पास आयेंगे और उनसे अपना क्रिस्सा बयान करेंगे। हज़रत मूसा (अ०) कहेंगे, मैं इसका मर्दे मैदान नहीं, तुम हज़रत आीसा (अ०) के पास जाओ, वह अल्लाह की रूह हैं। और उसका कलिमा^४ हैं। वह हज़रत आीसा (अ०) के पास आयेंगे। हज़रत आीसा (अ०) कहेंगे मैं इसका मर्दे मैदान नहीं। वह मुहम्मद (स०) के पास आयेंगे और खड़े हो जायेंगे। आपको इजाज़त दी जायेगी। अमानत और रिश्ता भेजा जायेगा। वह पुल सिरात^५ के पहलुवों पर दाहिने बायें खड़े होंगे और तुम में का अब्बल बिजली की तरह गुज़र जायेगा। मैंने कहा मेरे माँ बाप आप पर फ़िदा हों, बिजली कैसे गुज़रती है ? फ़रमाया, क्या तुम नहीं देखते कि बिजली गुज़रती है और निगाह के फिरने तक पलट आती है। फिर हवा की तरह गुज़रेंगे, फिर चिड़ियों की तरह, फिर आदमियों की तेज़ दौड़ की तरह उन लोगों के आमाल ले जायेंगे। और तुम्हारे नबी सिरात पर खड़े हुए कहते होंगे, ऐ रब ! सलामत रख यहाँ तक कि बन्दों के आमाल आजिज़ हो जायेंगे। एक आदमी लाया जायेगा और वह चलने की इस्तिताअत^६ न रख सकेगा तो वह घिसलते हुए चलेगा और सिरात^७ के किनारों पर काँटे लटके हुए होंगे जिनको पकड़ने का हुक्म दिया जायेगा। पस कोई ऐसा होगा जिसको चरका लगा सो वह निजात पा गया, और कोई ऐसा होगा जो जहन्नम में औंधा दिया जायेगा। कसम उसकी जिसके कब्जे में अबू हुरैरः (र०) की जान है, दोज़ख की गहराई सत्तर साल की है। [मुस्लिम]

बैट ८ एक सहाबी को क़र्ज़ की फ़िक्र और अपने बेटे को वसियत

हज़रत अब्दुल्लाह बिन जुबैर (र०) से रिवायत है कि मेरे वालिद ने जंगे जमल के दिन मुझे बुलाया। मैं उनके पहलू में जा खड़ा हुआ। उन्होंने कहा, ऐ मेरे बेटे, आज या तो ज़ालिम^८ क़त्ल किया जायेगा या मज़्लूम^९ ! मेरा खयाल है कि मैं अन्करीब मज़्लूम क़त्ल किया जाऊँगा। अब मुझे अपने क़र्ज़ की बहुत फ़िक्र है, बताओ तुम्हारी क्या राय है। हमारा क़र्ज़ अदा कर देने के बाद कुछ बचेगा भी ? फिर कहा, ऐ मेरे बेटे ! मेरा माल बेचकर क़र्ज़ अदा कर देना और मुझे वसियत की एक

१ परोक्ष २ श्रेष्ठ वाणी (धर्मग्रंथ तौरात) ३ सम्मानित ४ शब्द ५ दोज़ख पर एक पुल—बहुत बारीक गैसे तलवार की धार ६ सामर्थ्य ७ मार्ग ८ अन्यायी, अत्याचारी ९ जिस पर अन्याय हो।

तिहाई मेरे पोतों के लिए है (यानी अब्दुल्लाह बिन जुबैर (२०) के बेटे) । हज़रत हिशाम कहते हैं कि अब्दुल्लाह के बेटे खुबैब (२०) और अब्बाद (२०) हज़रत जुबैर (२०) के बाज़ लड़कों के बराबर थे (यानी चचा के बराबर) । हज़रत जुबैर (२०) के नौ लड़के और नौ लड़कियाँ थीं । हज़रत अब्दुल्लाह कहते हैं कि वह मुझसे अपने क़र्ज़ के मुतअल्लिक वसियत करने लगे और कहने लगे कि ऐ मेरे बेटे, अगर तुम आजिज़ हो जाना तो मेरे मौला से मदद चाहना । क़सम खुदा की मैं नहीं समझा । मैंने कहा, कौन मौला ? कहा अल्लाह । क़सम खुदा की जब मुझे फ़िक्र होती तो मैं कहता ऐ जुबैर (२०) के मौला उनके क़र्ज़ को अदाकर दे । तो वह अदा हो जाता था । वह अपनी पेशीनगोई के मुताबिक जंग में शहीद हो गये । न एक अशफ़ी छोड़ी और न दिहम । मगर कुछ ज़मीनें थीं और जंगल और ग्यारह घर मदीना में । दो बसरे में, एक कूफ़ः में, एक भिस्त्र में और उन पर क़र्ज़ का बार यों हो गया था कि अक्सर आदमी उनके पास अमानत रखाने आते तो वह कहते कि मैं क़र्ज़ लिए लेता हूँ इसलिए कि मैं ज़ायः होने से डरता हूँ । वरना न वह कहीं के हाकिम रहे न खिराज का टैक्स वसूल किया । लेकिन जंगों में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और हज़रत अबूबकर (२०) व हज़रत अुमर (२०) व हज़रत उस्मान (२०) के साथ शरीक होते रहे । जब मैंने उनके क़र्ज़ का हिसाब लगाया तो बाईस लाख निकला । एक दिन हकीम बिन हिज़ाम मुझसे मिले और कहा ऐ भतीजे, मेरे भाई पर कितना क़र्ज़ है । मैंने कहा एक लाख और बाक़ी छुपा ले गया । हकीम बिन हिज़ाम ने कहा वल्लाह मेरा खयाल है कि तुम्हारा माल इसको काफ़ी न होगा । मैंने कहा अगर बाईस लाख हों तो कहा, मेरा खयाल है कि तुम उसकी अदायगी की ताक़त नहीं रख सकते, अगर तुम्हारी ताक़त से बाहर हो जाये तो मुझसे मदद चाहना ।

हज़रत जुबैर (२०) ने गाबः एक लाख सत्तर हज़ार में खरीदा था । हज़रत अब्दुल्लाह ने उसको सोलह लाख में बेचा । फिर हज़रत अब्दुल्लाह ने कहा जिस जिस पर जुबैर का क़र्ज़ हो वह इस जंगल में हमसे मिले तो सबसे पहले हज़रत अब्दुल्लाह बिन जाफ़र आये । उनके चार लाख हज़रत जुबैर (२०) के ज़िम्मे थे । हज़रत अब्दुल्लाह बिन जाफ़र ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन जुबैर (२०) से कहा अगर तुम चाहो तो मैं मुअफ़ कर दूँ । बोले नहीं । कहा अच्छा मैं ठहर जाऊँ सब को देकर बाद में मुझको देना । कहा नहीं । हज़रत अब्दुल्लाह बिन जाफ़र ने कहा तो मेरी तरफ़ एक टुकड़ा मुन्तक़िल कर दो । हज़रत अब्दुल्लाह

बिन जुबैर (२०) ने कहा यहाँ से यहाँ तक तुम्हारा है। हज़रत अब्दुल्लाह बिन जाफ़र को देकर साढ़े चार हिस्से बाँकी रहे। फिर हज़रत मआवियः (२०) के पास आये। उनके पास अम्र बिन उसमान (२०), मुन्ज़िर बिन जुबैर (२०) (हज़रत अब्दुल्लाह के भाई) और इब्नि ज़मअः थे। हज़रत मआवियः (२०) ने कहा गावः की क्या कीमत लगी, कहा हर हिस्सा एक लाख का। कहा कितना बाँकी रहा। कहा साढ़े चार हिस्से। हज़रत मुन्ज़िर बिन जुबैर (२०) ने कहा एक लाख का एक हिस्सा मैंने ले लिया। हज़रत अम्र बिन उसमान ने कहा एक लाख का एक हिस्सा मैंने ले लिया। हज़रत इब्नि ज़मअः ने कहा एक लाख का मैंने लिया। हज़रत मआवियः (२०) ने कहा कितना बाँकी रहा, कहा डेढ़ हिस्सा, कहा वह मैंने डेढ़ लाख में खरीद लिया। हज़रत अब्दुल्लाह (२०) बिन जाफ़र (२०) ने अपना हिस्सा हज़रत मआवियः (२०) के हाथ छः लाख में बेच डाला। जब हज़रत अब्दुल्लाह ने क़र्ज़ की अदायगी से फ़रागत पायी तो भाइयों ने कहा कि अब मीरास को तक्रसीम करो। कहा वल्लाह मैं अभी तक्रसीम न करूँगा। मैं बराबर चार साल हज में मनादी करता रहूँगा कि जिसका जुबैर (२०) पर क़र्ज़ हो वह हमारे पास आये, हम उसको अदा करेंगे। पस जब चार साल पूरे हो गये तो तक्रसीम किया और एक तिहाई निकाल लिया था। (वसियत के मुताबिक) हज़रत की चार बीवियाँ थीं, हर बीवी के हिस्से में बारह बारह लाख आये। उनका पूरा माल पाँच करोड़ दो लाख था। [बुख़ारी]

जुल्म

आयात

...मा लिज्जालिमीन मिन् हूमीमिन्वा ला शफ़ीअियुताञ्जु त

ज़ालिमों का कोई दोस्त नहीं और किसी की शिकायत न मानी जायेगी।

[सू० मोमिन्, रू० २ आ० १८]

...वज्जालिमुन मालहुम् मिन्वा लिग़ियव्व ला नसीरिन् (८)।

ज़ालिमों का कोई दोस्त नहीं और न उनका कोई मददगार।

[सू० शूरा, रू० आ० ८]

सरलार्थ—सीता के विस्फारित नयनों में पुतलियाँ चंचल गति कर रही हैं। निर्लज्ज भ्रमर पद्म का साथी होकर (पद्म पर बैठकर) उन्हीं पुतलियों की क्रीड़ा को सीख रहा है। (भौरे को निर्लज्ज इसलिए कहा गया है कि वह स्वयं अपने को मन्थर तथा पद्म को श्रीहीन जानते हुए भी सीता के नयनों तथा पुतलियों की लीला के लिए ललचाता है)। उसी छवि की समानता के लिए नीलोत्पल पवन से हिल रहा है। परन्तु वह समान नहीं हो सकता। यह जानकर कि सीता के नेत्रों की चंचलता के साथ लट्टू समान नहीं होगा, युवकों ने उसे त्याग दिया। फिर भी, वह लट्टू बालकों के हाथों में, क्रीड़ा के मिस चंचलता सीख रहा है। (९)

विस्फारित—खोले हुए; बिलज्ज भृंग—निर्लज्ज भ्रमर; सरोज—कमल; सारणी—लट्टू या लट्ट जातीय खिलौना (व्यतिरेक अलंकार)। (९)

वक्र भ्रूलता निकटे स्थिता चाहि कमाणे रहि ।
विशिख गति करअछन्ति पक्ष्मपक्षकु बहि ।
वर्णं त्रिविधुं शाळित साध, हिङ्गुल कळा शङ्ख ।
बहुरूप ए आन पराये ग्रथा आपण सुखे । १० ।

सरलार्थ—सीता जी के नेत्र पक्ष्मों (बरौनियों) को धारण करके वक्र (टेढ़ी) भ्रूलताओं के निकट स्थित हैं। विशिख (बाण) पक्षों (पंखों, परों) को धारण करके कमानों (धनुषों) पर चढ़कर सीता जी के नेत्रों को देखते हुए उनसे चंचल गति की शिक्षा ले रहे हैं। नेत्रों में रक्त, कृष्ण तथा शुक्ल—ये तीन रंग हैं। उसी तरह शर (बाण, विशिख) ईगुर (लाल), काले तथा सफेद—इन तीनों वर्णों में साधु (उत्तम, सुन्दर) हैं और बहुरूपियों के अपनी इच्छा के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप धारण करने की तरह चित्रित हुए हैं। इतनी चेष्टाओं के बाद भी शर नेत्रों के साथ समान नहीं हो सका, क्योंकि वह पर के (दूसरे के) द्वारा चालित होता है। जब कि नेत्र अपनी इच्छा से ही चलता है। (१०)

शाळित—चित्रित; हिङ्गुल—ईगुर; कळा—काला; शङ्ख—शुक्ल रंग; (व्यतिरेक)। (१०)

विपिन घने पशि बहने अश्वले हरि मृग ।
बंशरे केहि से सम ध्यायी मरि इन्दुरे योग ।
बाञ्छित कर्महीनर श्रम कले प्रापत काहिँ ?
विमल पदार्थकु सर्वदा समल कला ग्रहिँ । ११ ।

सरलार्थ—सीता के नेत्रों की चंचलता से मृग (हिरन) की गति पराजित हो गयी। इसलिए लज्जा के मारे हिरन घने जंगल में घुसकर जा छिपा। उस मृग-वंश में कोई सीता के नेत्रों की चंचलता का ध्यान (चिन्ता) करते हुए मर गया और उसने जाकर चन्द्रमा में अवस्थान किया। स्वयं तो समान नहीं हो सका, उल्टे परिणाम यही हुआ कि उसने निर्मल चन्द्र को भी कलंकित कर दिया। कर्महीन (भाग्यहीन) मनुष्य चाहे कितना भी परिश्रम क्यों न करे, अपने मनोरथ को कभी नहीं प्राप्त कर सकता है। (११)

(पशु—घुसकर; ध्यायी—ध्यान करने वाला; इन्दु—चन्द्र; वाञ्छित—मनोरथ; कर्महीन—हृतभाग्य, भाग्यहीन; विमल—निर्मल, स्वच्छ; समल—मलयुक्त, कलंकयुक्त (व्यतिरेक)। (११)

बसिले तुळे दइवबळे गुड्जा कि रत्न प्राये ?

बिनिमिषे से मीन-समाजे, खञ्जन कम्पे भये ।

बुडाइ रागकुण्डरे बेग वेग अपाङ्ग ढाळि ।

बडिण परि निए ओटारि मन-मीनकु बाळि । १२ ।

सरलार्थ—दैवविधान से गुंजा (घुंघुची) अगर तराजू पर बैठे तो वह क्या कभी सुवर्ण के साथ समान होती है? उसी तरह मृग (हिरन) चन्द्रमा में जा बैठने पर भी सीता के नेत्रों की चंचलता को प्राप्त नहीं कर सका। मीनावली नेत्रों के समान न होकर निर्निमेष हुई। खंजन पक्षी भय से कांपने लगे। सीता के अनुराग-रञ्जित चंचल कटाक्षपात (मछली फँसाने वाली) कटिया के सदृश पुरुष के मन रूपी मीन को खींच लेते हैं। (१२)

गुंजा—घुंघुची; विनिमेष—निर्निमेष, पलकशून्य; बाळी—सीतादेवी। (१२)

बिलोक करि अळक फरी एथिकि सम नोहि ।

बेताळ भइरबकु ध्यायि खड्ग-प्रहार बहि ।

बास ललाट पछरे पट आउ ता कि लखिबा ?

बिगळिताङ्क अर्द्धशशांक योखिबा न योखिबा । १३ ।

सरलार्थ—सीता के ललाट को देखकर फरी ने इनके साथ समान न होकर बेताल भैरव, दोनों का ध्यान करके खड्ग-प्रहार सहन किया। जो वस्त्र ललाट के पीछे है, उससे भला हम ललाट की बराबरी कैसे कर सकते हैं? निष्कलंक अर्द्धचन्द्र को ललाट के समान क्यों मानें? (वह समान होने के लिए अनुपयुक्त है)। (१३)

अळक—लट, घुंघराले बाल (यहाँ) ललाट; फरी—चमड़े की छोटी ढाल; एथिकि सम नोहि—इसके साथ समान नहीं; बेताल—शिवजी का अनुचर; भइरव (भैरव)—महादेवजी की भयानक अष्टमूर्ति; (तांत्रिक साधक बेताल-भैरव के द्वारा असाध्य का साधन कर सकते हैं।); योखिबा न योखिबा—समान करें या न करें—दोनों एक ही बात। (क्योंकि इसमें कुछ लाभ है ही नहीं) (व्यतिरेक)। (१३)

(१३) बिफळ हेव तोषिबा शिव तपस्या गंगाकूल।
बचने नाहिँ सर्वाङ्गे ग्रहिँ देवा उपमा तुल।
बिसोरिथिले उरज भळि नोहे से शम्भु अंगे।
बिष्णुपदी त होइ लज्जित हारिछि हारसंगे। १४।

सरलार्थ—सीता के सब अंगों के साथ चन्द्र की उपमा न देने से चन्द्र का गंगा नदी के किनारे पर तपस्या करके शिवजी को प्रसन्न करने का श्रम विफल हो जाएगा। (यह कहकर कवि फिर कहते हैं—) “मैंने बिसराया था कि शम्भु तो स्वयं उच्चता तथा पृथुलता में सीता के स्तन-युगल के समान नहीं हैं। फिर गंगा देवी तो उनके हार के सामने हार मानकर लज्जित हैं। सुतरां जहाँ स्वयं शिवजी या गंगा जी समान नहीं वहाँ शिवजी का अनुगत चन्द्र सीता जी के किसी अंग के समान कैसे हो सकता है? (१४)

बिसोरिथिले—बिसराया था, भूला था; उरज—स्तन; भळि—तरह; विष्णुपदी—गंगा; हारिछि—पराजित हुई है (व्यतिरेक)। (१४)

(१४) बडिमातति शोभार श्रुति विश्राम खट दोळि।
बोलि पाटळि पा बोलुँ टळिलार उपमा झळि।
बर्जित गार दीर्घ लृकार ह्रस्व त सान हेला।
बुद्धिकि पाश करन्ते पाश गर्भरे बुडिगला। १५।

सरलार्थ—सीता जी का कर्णयुगल शोभा-महत्ताओं (श्रेष्ठताओं) के समूह का विश्राम-मञ्च है, अर्थात् कर्णयुगल श्रेष्ठ शोभाओं का आधार है। ऐसे कर्णों से पाटली पुष्प की उपमा कैसे दें? उपमा को ‘पा’—यह कहते-कहते वह ‘टल’ (टळि) पड़ा, अर्थात् भय से खिसक पड़ा। दीर्घ ष (लृकार) की लकीर कट जाने से वह (ऌ) ह्रस्व हुआ; अतएव न्यूनता-सूचक नाम धारण किया। वह (ऌ—ह्रस्व लृकार) कर्णों के समान कैसे होता? फिर पाश को कर्णों का उपमान करने के लिए विचार करने पर वह समुद्र के गर्भ में जा डूबा। अतएव पाश भी उपमायोग्य नहीं हुआ। (१५)

बड़िमातति शोभार—श्रेष्ठ शोभाओं का आधार; पाटलि—पाटल का फल; कभी-कभी कान की तुलना '६' (ह्रस्व लृकार) से की जाती है। ओड़िया वर्णमाला में ह्रस्व 'लृ' और दीर्घ 'लृ' क्रमशः '६' और '६'—इस प्रकार 'कान' की आकृति के लिखे जाते हैं। कवि उपेन्द्र भञ्ज के अनुसार '६' (दीर्घ लृकार) वर्जितगार (वर्जितरेखा, रेखामुक्त) होने से '६' (ह्रस्व लृकार) बन जाता है। '६' (दीर्घ लृकार) से महत्ता में न्यूनतर हुआ। वह '६' (ह्रस्व लृकार) सीता के कर्णों का उपमान कैसे हो सकता? (अर्थात् नहीं।) पाश—अस्त्र विशेष (व्यतिरेक)। (१५)

व्यतिरिक्त ए दृष्टित नुहे खण्ड उपमा रुण्ड।

बिम्ब निर्मल कृतमण्डल-खण्ड मण्डल गण्ड।

बोलाउअछि दर्पण छि छि कर-कळङ्के सेहि।

बन्ध कि खड्गपाळि पदग करे कळङ्क वहि। १६।

सरलार्थ—सीता के निर्मल गण्डमण्डल उपमा-समूह को खण्डन कर रहे हैं। यह अतिशयोक्ति नहीं। उन गण्डमण्डलों को देखकर चन्द्रमण्डल भी पराजित होता है। क्योंकि चन्द्रमण्डल में कलंक वर्तमान है, जब कि सीता के गण्डमण्डल निष्कलंक हैं। दर्पण भी उनके गण्डमण्डलों के तुल्य नहीं होगा, क्योंकि हाथ के मैल के स्पर्श से दर्पण कलंकित होता है। इसलिए सीता के गण्डमण्डल दर्पण की हँसी उड़ाते हैं। खड्ग की मुठिया भी उन गण्डमण्डलों के समान नहीं हो सकती, चूँकि पाइक (पदातिक-पैदल सिपाही) के हाथ में रहकर वह भी कलंकित है। सीता के निष्कलंक गण्डमण्डल चन्द्रमण्डल, दर्पण तथा तलवार की मुठिया से बढ़कर सुन्दर हैं। (१६)

खड्गपाळि—तलवार की मुठिया; पदग—पदातिक, पाइक (व्यतिरेक अलंकार)। (१६)

बरारोहार नासाडम्बर इच्छा कलाकु शुक।

बिना दोषरे शिकुळि छळे शाङ्कोळि दिए लोक।

बिहग सिना होइ तन्मना पारिला नाहिँ पाञ्चि।

बिनतासुत सिद्धि उन्नत चाहिँ खगेन्द्र रचि। १७।

सरलार्थ—तोते ने परमसुन्दरी सीता जी की नाक की शोभा के समान होने की इच्छा की। इस हेतु लोग उसे बिना दोष के पिंजड़े में बँदी बना रहे हैं। नादान पक्षी होने के कारण तन्मय होकर वह अपनी भलाई सोच नहीं सका। (फलस्वरूप दण्ड पा रहा है।) परन्तु गरुड़ ने ऊँची नाक की ओर निहार कर प्रार्थना की। इसलिए वह पक्षिराज हुआ। (भावार्थ यही है कि सीता जी की नाक तोते की नाक से सुन्दरतर तथा गरुड़ की नाक से उन्नततर हुई है।) (१७)

वरारोहा—परमासुन्दरी; उन्मना—उद्विगना, उत्कण्ठिता; विनतासुत—गरुड़;
खगेन्द्र—पक्षिराज (व्यतिरेक अलंकार) । (१७)

बुझाइ तिळ असमे तिळसुमन बिहि नामे ।
विधिकि तूण उपमा पुण निर्माण पशु चर्म ।
वेणु वरुण घेनिण जाण समुद्र मध्ये पशे ।
व्याळ ग्रासित मळय बात तुळा हेलारु श्वासे । १८ ।

सरलार्थ—तिल का फूल सौन्दर्य में सीता की नाक के समान नहीं हो सका । इसलिए विधाता ने उसे 'तिल' कुसुम का नाम दिया है । 'तिल' नाम से उसकी सौन्दर्य-न्यूनता सूचित हो रही है । तरकस पशुचर्म से निर्मित है, सुतरां सीता जी की नाक के साथ उसकी तुलना विधि-संगत है क्या ? (अर्थात् नहीं ।) वंशी भी नाक के समान न हो सकी, इसलिए वरुण ने उसे लेकर समुद्र में प्रवेश किया । जब तुलना द्वारा यह सिद्ध हुआ कि सौरभ में मलय पवन सीता जी की साँस के समान नहीं है, तो साँपों ने उसे पान कर लिया । (१८)

तूण—तरकस; व्याळ—साँप (व्यतिरेक) । (१८)

बाळा अधर अरुण सार छवि बहिबा स्मरि ।
बाळ अरुण घेनि अरुण पद्मानुरागे पूरि ।
बिरङ्ग सेहि दण्डके होइ सन्ताप विभूषण ।
बहे सन्ध्यारे माणिक्य धारे, ज्योतिकि करि ऋण । १९ ।
बितुळ तेवे मज्जि अर्णवे पुणिहिं से व्यवस्था ।
बाळ वृद्धर ग्रथा पासोर दिन दिनक कथा ।
बोलिवा काहुं मन्दार आउ धरिछि मन्द काळि ।
बैरागी हेब बिचारि बिम्ब भस्म हेला कि बोळि ? २० ।

सरलार्थ—बाला (सीता) के लाल रंग वाले अधरों के साथ समान होने के उद्देश्य से बालरवि रक्तवर्ण होकर सारथि अरुण को साथ लिये पद्म के अनुरागभाजन हुए । फिर भी समान न हो सकने के कारण एक क्षण में विवर्ण होकर सन्तप्त हुए । (अर्थात् अग्निमय तेज में भस्मीभूत हुए ।) फिर सन्ध्या के समय माणिक्य से ज्योति को ऋण लेकर अपने शरीर में धारण किया । परन्तु तथापि समान न हो सकने के कारण लज्जावश अस्त-समुद्र में डूब गये । बालकों तथा बूढ़ों को आज की बात कल तक याद नहीं रहती । उसी तरह यह बात याद न रहने से

सूर्य हररोज वही व्यवस्था करने लगे । (हररोज लज्जित होते हुए भी सूर्य को यह बात याद नहीं रहती और वे फिर प्रतिदिन उदित तथा अस्त होते हैं ।) बाल रवि भी जिन अधरों के समान नहीं हो सका, उनकी मन्दार (अड़हल) फूलों से क्या तुलना करें ? मन्दार (अड़हल) शब्द ने 'मन्द' (खराब)—इस कालिमा को धारण किया है । (इस हेतु मन्दार कभी अधरों का उपमान नहीं हो सकता ।) बाला के अधरों के समान न हो सकने के कारण बिम्बफल ने रूठकर 'वैरागी हो जाऊँगा'—ऐसा विचार करके मानो शरीर पर राख मली हो । (१९-२०)

अरुण—रक्तवर्ण; अरुण—सूर्य, अरुण—सूर्य-सारथि; (यमक); विरंग—विवर्ण; दण्डके—क्षण ही में; अर्णव—समुद्र; बिम्ब—कुन्दरू फल (व्यतिरेक) । (१९, २०)

बिद्रुम ग्रहिं छुञ्चि मराइ सूचिका व्याजे हृद ।
बन्धुजीव ग्रे अळपके भजे मळिन न संवाद ।
वैभव शुभे ललाटे शोभे नारीर ग्रे सिन्दूर ।
बिहाइ से त परे दळित गुपत सम्पूटर । २१ ।

सरलार्थ—अपनी रक्तिमा (लाली) में सीता जी के अधरों से समान न होकर प्रवाल ने 'अपमान की अपेक्षा मृत्यु श्रेयस्कर है'—यह सोचकर सुई से अपने हृदय को विधा लिया । बन्धुक या दुपहरिया का फूल थोड़े ही समय में मुरझा जाता है । सुतरां उसके लिए सीता जी के अधरों के लिए उपमान करना धृष्टता ही है । जो सिन्दूर माङ्गलिक कार्यों में नारियों के ललाटों पर शोभित होता है, वह भी अधरों की लाली के तुल्य न होकर दूसरों से कुचला जाकर संपुट में जा छिपा । (२१)

बिद्रुम—प्रवाल, मूँगा; छुञ्चि—मुई; बन्धुजीव—बन्धुक, दुपहरिया का फूल; (व्यतिरेक अलंकार) (२१)

बज्र दशन किछि प्रसन्न हरणे कहँ चिन्ता ।
बसाइ शाणे कर्त्तप्रमाणे दण्ड दिअइ धाता ।
बोधाइ शुक्तिभव उत्पत्ति नोहु मुँ दन्तदास ।
बिमुक्त होइ मुक्ता बोलाइ तार कि हेला नाश ? २२ ।

सरलार्थ—जब विधाता ने यह बात जान ली कि हीरा उनके दाँतों की प्रसन्नता (ज्योति) का हरण करने की बात सोच रहा है, तब उन्होंने कराँत (आरी के दाँत) तुल्य सान पर उसे दण्ड दिया । फिर मुक्ता (हीरे की दुर्दशा देखकर) 'जन्म के पहले मैं दाँत का दास हूँ' ऐसा कहने से (सीप के बन्धन

से) विमुक्त (मुक्त) हुई। इसलिए लोग उसे 'मुक्ता' कहने लगे। क्या इससे 'मुक्ता' की कुछ हानि हुई? (अर्थात् नहीं।) हीरे ने अभिमान करके दण्ड पाया; परन्तु दासत्व (बन्धन, अधीनता) स्वीकार करके भी मोती ने 'मुक्त' नाम प्राप्त किया। इसलिए वह (मोती) गौरवान्वित हुआ। (२२)

बज्र—हीरा; प्रसन्न—निर्मल कान्ति; शुक्तिभव—मुक्ता, मोती; (व्यतिरेक अलंकार)। (२२)

बाळिकारद खेदद कुन्दकळिका हृद फुटि ।
बीज देखाइ समान नोहि दाडिम्बफळ फाटि ।
बृक्षरे लम्बे लपन नम्रे एतिकि लभि लाभ ।
बिअर्थ हेला तण्डुळमाळा नाहिँ झलकप्रभ । २३ ।

सरलार्थ—सीता की दन्तपंक्ति कुन्दकलियों को दुःखद हुई। (अर्थात् दन्तपंक्ति को देखकर कुन्दकलियों को दुःख हुआ।) इसलिए उनके हृदय फट गये। फिर दन्तों के समान होने के लिए अनार ने फट कर बीजों को बाहर दिखाया। तिस पर भी समान न होने से लज्जा के मारे अधोमुख हो झूलने लगा। उसे इतना ही लाभ हुआ कि अधोमुख दशा में दोलायमान हो तपस्या करने पर शायद कभी दन्तों की समता को प्राप्त कर ले। तण्डुलश्रेणी दन्तों के तुल्य नहीं क्योंकि उसमें दन्तों की-सी उज्ज्वल प्रभा नहीं। इस प्रकार उपमायोग्य न हो सकने के हेतु तण्डुल का जीवन व्यर्थ हुआ। (२३)

रद—दन्त; खेदद—दुःखदायक; दाडिम्ब फल—अनार; तण्डुळ—चावल (व्यतिरेक)। (२३)

बन्दाइ मित शारदा नत होइ बचन तुले ।
बाणी भारती से सरस्वती दुहिङ्कि लोके बोले ।
बल्लकी तार तुल कि स्वर परवशे से जात ।
बनप्रियहिँ कुहु या कहि अन्धार दिशि सत । २४ ।

सरलार्थ—विनय-प्रकाशपूर्वक सरस्वती ने सीता के वचन के साथ मित्रता की। इसलिए 'वचन' तथा 'सरस्वती' दोनों को लोगों ने 'वाणी' का नाम दिया है। वीणा का स्वर सीता के स्वर से समान नहीं हो सकता। क्योंकि वीणा का स्वर किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा प्रकट होता है। (परन्तु सीता का स्वर स्वतः प्रकट होता है)—सीता का स्वर

सुनकर कोयल को चारों ओर अन्धकार ही दीख रहा है। इसलिए अपनी बोली ('कुहू' 'कुहू') के मिस वह जो 'अन्धकार' 'अन्धकार' कह रहा है वह सच है। (२४)

शारदा—सरस्वती; बल्लकी—बीणा; वनप्रिय—कोयल; कुहू-कुहू—कोयल की बोली, अन्धकार (व्यतिरेक तथा श्लेष)। (२४)

बड़ मधुर द्राक्षारु गिर सेहि चातुरी स्थान ।
वर्णुथिले ता तुण्डकु पिता आन चरितमान ।
बिबुधाशन अमृत पान होए केवळ मुखे ।
बिवेकि ! घेन श्रवणे पान ग्राहा करन्ति मुखे । २५ ।

सरलार्थ—सीता का वचन द्राक्षारस से बढ़कर मधुर तथा चातुरीपूर्ण है। यदि उसकी वर्णना करने बैठें, तो सभी दूसरे चरित जीभ को कटु लगते हैं। (द्राक्षारस खाने पर अन्य कोई स्वाद रुचिकर नहीं होता। उसी प्रकार उनका वचन सुनने पर किसी अन्य का वचन सुखकर नहीं होता।) जो अमृत देवताओं का भोजन है उसे केवल मुख से ही पिया जाता है। परन्तु लोग मुख से सीता के वचनामृत को कर्णों से ही पान करते हैं। हे विवेकियो ! यह विचार करो कि सीता का वचन अमृत से श्रेष्ठ है। (२५)

पिता—कटु, कडुवा; बिबुधाशन—देवताओं का भोजन (अमृत); (व्यतिरेक)। (२५)

बिभर्ति रससार विशेष चिबुक दिव्यपात्र ।
विधाताङ्गुलि चिह्नरे झलि नारङ्ग केते मात्र ।
बहि त्रिरेखा त्रिपुरे देखा कण्ठकु नाहिँ लक्षे ।
व्रत बाञ्छित कपोत व्रात खळु शिळाकु भक्षे । २६ ।

सरलार्थ—सीता जी के चिबुक (ठोड़ी) को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो चिबुक-रूपी दिव्य पात्रों में विधाता द्वारा श्रेष्ठ रस (शृंगारादि) भरते समय उनके अंगुलिचिह्न उस पर टिक गये। इससे चिबुकों की कोमलता सूचित हो रही है। ऐसे चिबुक की नारंगी से उपमा देने की क्या बिसात? (अर्थात् नारंगी किसी भी प्रकार उसके उपमा-योग्य नहीं हो सकती।) उनके कण्ठ के समान होने के लिए स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल तीन भुवनों में कोई पदार्थ नहीं; जिसके प्रमाण-स्वरूप कण्ठने त्रिरेखा (तीन रेखाएँ) धारण की हैं।

कामिन । व्यापिलें पूर्ण श्रीरामें । ५६ नर नारी मिथ्या
भास । अवघा वोतला पुराणपुरुष । जें कृपा करील सर्वेश ।
ब्रह्मानंदस्वामी पै । ५७ असो आतां शृंगऋषी । म्हणे-कधीं
येतील ते तापसी । तों अकस्मात त्या समयासी । रंभा उर्वशी
पातल्या । ५८ उत्तम स्वरूपें मंजुळ गायन । सुंदर मुख आकर्ण
नयन । शृंगीलागीं खुणावून । कामभाव दाविती । ५९
नाना पक्वान्नें अमृतफळें । शृंगीस देती बहु रसाळें । मग तो
उतरोनि खालें । जवळी येवोनि बैसला । १६० तयांसी पुसे
आवडीकरून । सांगा तुमची नामखूण । हीं गलंडें काय म्हणोन ।
वक्षःस्थळीं तुमच्या पै । ६१ येरी गदगदां हांसती । तुझिया
माथां शृंग निश्चितीं । म्हणोनि शृंगऋषी म्हणती । तुजलागीं
ऋषिपुत्रा । ६२ आमुचें नांव गलंडऋषी । बहु सुख असे
आम्हांपाशीं । येरु म्हणे-तें दाखवा आम्हांसी । चवी कैसी
पाहों पां । ६३ त्या म्हणती जी तत्त्वतां । कामासन तुज शिकवूं

यदि जगज्जीवन भगवान कृपा करे, तो जन-वन हरि (भगवत्) रूप
दिखायी देगा । (फिर) कैसा पुरुष, कैसा नपुंसक, कैसी स्त्री—(जान
पड़ेगा कि सब को) श्रीराम ने व्याप्त कर लिया है । ५६ यदि सर्वेश्वर
भगवान् (जो) गुरु ब्रह्मानन्द स्वामी (के रूप में उत्पन्न है) कृपा करेगा
तो (विदित हो जाएगा कि) स्त्री-पुरुष केवल झूठा आभास हैं—भगवान
पुराण पुरुष ही सबके साँचे में ढला हुआ है । ५७

अस्तु । अब शृंगी ऋषि सोच ही रहा था कि वे तापसी कब
आएँगे, कि उस समय यकायक रंभा, उर्वशी आ पहुँचीं । ५८ उनका
रूप सुन्दर था, गायन मधुर थ, मुख सुन्दर था, नेत्र कानों तक फैले हुए
अर्थात् विशाल थे । वे शृंगी को इशारे करके काम भाव दिखाने लगीं ।
५९ उन्होंने शृंगी को अनेक पक्वान्न (और) अमृत के समान मधुर
और बहुत रसीले फल दिये । तब वह नीचे उतरकर उनके पास आकर
बैठ गया । ६० उसने रस लेते हुए उनसे पूछा (कहा), “तुम अपने नाम,
लक्षण बताओ । तुम्हारी छाती पर ये उभार (गलगण्ड) कैसे हैं ?” ६१
(यह सुनकर) वे कहकहे लगाकर हँसती हैं और कहती हैं, “हे ऋषिपुत्र
तुम्हारे मस्तक पर शृंग (सींग) है, (इसलिए) निश्चय ही तुम्हें ‘शृंगऋषि’
कहते हैं । ६२ हमारा नाम ‘गलगंड’ ऋषि है । हमारे पास बहुत सुख
(अर्थात् सुख देने वाली सामग्री) है ।” इसपर दूसरे ने अर्थात् शृंगी ने

आतां । तों मदनें मोहिलें ऋषिसुता । आसक्त सुरतालागीं
 होय । ६४ मग तो म्हणे-मी तुम्हांआधीन । जिकडे न्याल
 तिकडे येईन । मग त्यांनीं विमानां बैसवून । आणियेला
 अयोध्येसी । ६५ दशरथें करुनि नमस्कार । केला बहुत आदर ।
 म्हणे-महाराज तुम्ही बहु थोर । दर्शन आम्हां दिधलें । ६६
 मग पाळककन्या आपुली । शृंगऋषीस दिधली । लग्नसोहळा
 ते वेळीं । चार दिवस जाहला । ६७ मग ऋषी मेळविले
 बहुत । जे शापानुग्रहसमर्थ । वसिष्ठ मुख्य आचार्य जेथ ।
 न पडे पदार्थ न्यून कांहीं । ६८ इकडे ज्ञानीं पाहे विभांडकमुनी ।
 तों स्त्रियांनीं सुत नेला चाळवुनी । परम क्रोधाविष्ट होउनी ।
 अयोध्येसी पातला । ६९ तों ऋषिवेष्टित देखिला कुमार ।
 जैसा नक्षत्रीं वेष्टिला रोहिणीवर । कीं किरणीं वेष्टिला दिवाकर ।
 तैसा स्वसुत देखिला । १७० स्नुषा देखोनि नयनीं । विभांडक

कहा, 'वह हमें तो दिखाओ । देखें उसका स्वाद कैसा है ।' ६३ तब
 उन्होंने कहा, 'हे (ऋषि), सचमुच अब तुम्हें (हम) कामासन सिखाएँगी ।'
 तो कामदेव ने ऋषिपुत्र को मोह लिया और वह स्त्री-संग के लिए आसक्त
 हुआ । ६४ तब फिर उसने कहा, 'मैं तुम्हारे अधीन हूँ । तुम जहाँ ले
 जाओगी वहाँ मैं आऊँगा ।' फिर विमान में बैठकर वे उसे अयोध्या में ले
 आयीं । ६५ दशरथ ने उसे नमस्कार करके उसका बहुत आदर किया
 और कहा, 'महाराज, तुम बहुत बड़े हो जो तुमने हमें दर्शन दिये ।' ६६
 तत्पश्चात् उसने (शान्ता नामक) अपनी पोष्या पुत्री शृंग ऋषि को (विवाह
 में) प्रदान की । उस समय विवाह समारोह चार दिन तक सम्पन्न हो गया ।
 ६७ फिर उसने अनेक ऋषियों को इकट्ठा किया जो (श्रवण के माता-
 पिता द्वारा दिये हुए) शाप को अनुग्रह में बदल देने में समर्थ थे । जहाँ
 मुख्य आचार्य के रूप में वसिष्ठ ऋषि हैं, वहाँ किसी पदार्थ की कमी नहीं
 (अनुभव) हुई । ६८

इधर विभाण्डक ऋषि ने (अन्तर) ज्ञान से देखा (ज्ञान लिया) कि
 चंचल बनाकर स्त्रियाँ (उनके) पुत्र को ले गयी हैं । अतः अतिशय क्रुद्ध
 होकर वह अयोध्या में आ पहुँचा । ६९ तो अपने पुत्र को ऋषियों द्वारा
 घिरा हुआ देखा । जैसे तारकाओं द्वारा रोहिणी-पति चन्द्रमा घिरा
 होता है, अथवा किरणों द्वारा दिवाकर सूर्य घिरा रहता है, वैसे ही
 ऋषियों द्वारा घिरा हुआ अपना पुत्र उन्होंने देखा । १७० (अपनी) आँखों

निवाला मनीं । दशरथ लागला ऋषिचरणीं । आनंदेंकरुनि तेधवां । ७१ विभांडक आनंदें बहुत । नृपासी आशीर्वाद देत । तुज होतील चौधे सुत । जे कां समर्थ त्रिभुवनीं । ७२ असो यज्ञमंडपीं शृंगी आपण । सकळ ऋषिमंडळ घेऊन । स्वाहाकारासी अवदान । मंत्रयुक्त टाकीत । ७३ पूर्णाहुतीचिये काळीं । प्रत्यक्ष प्रगटला ज्वाळामाळी । जैसा सूर्य उगवे उदयाचळीं । प्रातःकाळीं अकस्मात । ७४ चत्वारिशृंग द्विमूर्धन । सप्तपाणी त्रिचरण । देखतां यज्ञनारायण । ऋषिजन सुखावले । ७५ हातीं पायस-ताट भरून । शृंगीपाशीं देत कृशान । म्हणे अविलंबें पिंड करून । तिघीं राणियांस देइजे । ७६ बहु त्वरा करावी ये क्षणीं । विलंबें होय कार्यहानी । पोटा येईल कैवल्यदानी । क्षीरसागरविहारी जो । ७७ ऐसें बोलोनि तये काळीं । गुप्त जाहला ज्वाळामाळी । शृंगीनें वसिष्ठाजवळी । पायसपात्र दीधलें । ७८ वसिष्ठें करुनि तीन विभाग । राणियांस देत सवेग । कौसल्येसी श्रेष्ठ भाग । देता जाहला ऋषि तो । ७९

से बहू को देख विभाण्डक मन में शान्त (प्रसन्न) हो गया । तब दशरथ ने आनन्द पूर्वक उस ऋषि के चरण पकड़ लिये । ७१ विभाण्डक ने बहुत आनन्द से राजा को आशीर्वाद दिया, 'तिरे चार पुत्र (उत्पन्न) होंगे जो त्रिभुवन में (सर्व) समर्थ होंगे (माने जाएँगे) । ७२ अस्तु । इधर यज्ञ-मण्डप में शृंगी स्वयं सब ऋषियों को साथ लेकर मंत्र पाठ पूर्वक स्वाहाकार के लिए अवदान (आहुति द्रव्य) समर्पित कर रहा था । ७३ जैसे प्रातःकाल में उदयाचल पर यकायक सूर्य प्रकट होता है, वैसे ही आहुति समर्पित करने की विधि के समाप्त होने के अवसर पर प्रत्यक्ष (यज्ञकुण्ड में से) अग्निदेव प्रकट हो गया । ७४ चार शृंग, दो मस्तक सात हाथ और तीन चरण-इनसे युक्त भगवान् नारायण को (आविर्भूत) देखकर ऋषि जन मुखी हो गये । ७५ हाथ में (जो) पायस भरा थाल था, उसे शृंगी ऋषि को देते हुए अग्निदेव ने कहा, 'अविलम्ब (बिना देर किये इसके) पिण्ड बनाकर तीनों रानियों को दो । ७६ इस क्षण बहुत जल्दी करो । विलम्ब (देर) करने से कार्य-हानि होगी । जो क्षीरसागर में विहार करता है वही मोक्षदाता (भगवान्) उनके उदर से प्रकट होगा । ७७ ऐसा कहकर उस समय अग्निदेव गुप्त (अदृश्य) हो गया । तब शृंगी ने पायसपात्र वसिष्ठ को दिया । ७८ (उस पायस के) तीन भाग बनाकर वसिष्ठ ने त्वरित रानियों को दिया । उस ऋषि ने पहला

दुजा सुमितेप्रती देत । तिजा कैकयीकरीं घालित । देखोनि
 ऐसें अद्भुत । क्रोध आला कनिष्ठेतें । १८० म्हणे मी रायासी
 प्रियकर । म्यां रथचक्रीं घालोनि कर । रणीं विजयी केला
 नृपवर । इंद्रादिक देवां देखतां । ८१ वयेंकरुनि वृद्ध फार ।
 ते ज्येष्ठ नव्हे साचार । जियेमाजी गुण थोर । तीच श्रेष्ठ
 जाणिजे । ८२ केतकीचें लघु पत्र । त्यास मानिती सर्वत्र ।
 इतर पत्रें दिसती थोर । परी चतुर न मानिती । ८३ अमोलिक
 लहान रत्न । काय करावे थोर पाषाण । मृगेंद्राची आकृति
 लहान । थोर वारण कासया । ८४ जवादिबिडालाचें वृषण
 सुवास । लहान परी आवडी श्रीमंतांस । रासभाचें थोर
 बहुवस । न शिवे कोणी तयातें । ८५ मज आधीं न देतां
 मान । काय करावा भाग मागून । म्हणोनि कैकयी रुसोन ।
 अधोवदन बैसली । ८६ मग बोले वसिष्ठ मुनी । विघ्न होईल
 येच क्षणीं । तों करींचा पिंड झडपोनी । घारीनें नेला
 अकस्मात । ८७ हाहाकार जाहला ते अवसरीं । निमिष न

बड़ा भाग कौसल्या को दिया । ७९ दूसरा भाग सुमित्रा को दिया और
 तीसरा कैकेयी के हाथ पर रख ही रहा था कि—यह अजीब बात देखकर
 सबसे छोटी रानी को क्रोध आ गया । १८० वह सोचने लगी मैं राजा
 की प्रिय (रानी) हूँ । मैंने रथ के पहिये में हाथ डालकर इंद्रादि देवों
 के समक्ष राजश्रेष्ठ को विजयी बना दिया । ८१ अवस्था में जो बहुत
 वृद्ध (बड़ा) हो, वह वस्तुतः ज्येष्ठ-सबसे बड़ा नहीं है; जिसमें बड़े गुण
 हों, उसी को श्रेष्ठ समझो । ८२ केवड़े का पत्ता छोटा होता है, फिर
 भी सर्वत्र उसे (बड़ा) मानते हैं; अन्य (पेड़-पौधों के) पत्ते बड़े दिखायी
 देते हैं, लेकिन चतुर लोग उनका मान नहीं करते । ८३ रत्न छोटा होने
 पर भी अनमोल होता है । (अन्य) बड़े पत्थरों को लेकर क्या करें ?
 सिंह का आकार छोटा होता है । उसकी तुलना में हाथी बड़ा होता है, फिर
 भी उससे क्या होता है ? ८४ जवादि नामक जाति के बिलाव के वृषण
 सुगन्धित होते हैं; वे छोटे होने पर भी अमीरों को पसन्द आते हैं । लेकिन
 गधे के वृषण बड़े विशाल होते हैं; (फिर भी) उन्हें कोई नहीं छूता । ८५
 मुझे पहले मान नहीं दिया तो पीछे से भाग लेकर क्या करें ? इसलिए
 कैकेयी रुठकर अधोमुख (सिर झुकाये) बैठ गयी । ८६ तब वसिष्ठ
 ऋषि ने कहा, 'इसी क्षण विघ्न (उपस्थित) होगा ।' त्यों ही यकायक
 (एक) चील लपककर (उसके) हाथ का पिण्ड ले गयी । ८७ उस समय

लागतां गेली घारी । कैकयी पडे धरणीवरी । आक्रंदत तेधवां । ८८ म्हणे माझे पूर्वकर्म गहन । मज कैचें पुत्रसंतान । अभाग्यासी निधान । जिरेल कोठून सांग पां । ८९ परम चिताक्रांत दशरथ । कौसल्येकडे विलोकित । मग कैकयीचें समाधान करीत । पट्टमहिषी तेधवां । १९० कौसल्या सुमित्रा दोघी जणी । अर्ध अर्ध विभाग काढोनी । देत्या जाहल्या ते क्षणीं । पूर्ण पिंड कैकयीतें । ११ जैसा भागीरथी आणि मंदाकिनी । तैशा कौसल्या सुमित्रा दोघी जणी । मत्सर अणुमात्र मनीं । न करिती स्वप्नीं सर्वथा । १२ जे अत्यंत कुटिल देख । तयांसी स्वप्नींही नाहीं सुख । न कदा मानिती कोणी लोक । सदा अपेशपात्र ते । १३ असो वसिष्ठें दिधलें तीर्थ । तिघीही पिंड प्राशन करीत । कैकयीच्या कंठीं पिंड अडकत । कासाविस जाहली ते । १४ मग वसिष्ठें शिपितां तीर्थ । अंतरीं पिंड उतरत । आनंदला राजा दशरथ । दानें देत अपार । १५ वस्त्राभरणें उदंड दक्षिणा । देवोनि गौरविलें ब्राह्मणां । सकळ

हाहाकार हो गया । चील को निकल जाते एक क्षण भी नहीं लगा । तब कैकेयी आक्रन्दन (जोर से रोती हुई) करती हुई भूमि पर पड़ गयी । ८८ उसने कहा—मेरा पूर्व कर्म (पूर्व जन्म में किया कर्म) गहन (गूढ़) है । मेरे पुत्र कैसे हो सकता है ? कहो तो, अभागे को धन कैसे हज़म हो जाएगा ? ८९ (इसपर) दशरथ अतिशय चिन्तातुर हो गया । उसने कौसल्या की ओर देखा । तब (वह) पटरानी कौसल्या कैकेयी को सान्त्वना देने लगी । १९० कौसल्या और सुमित्रा—इन दोनों ने अपने-अपने भाग से आधा-आधा अंश निकालकर उसी क्षण पूर्ण पिण्ड के रूप में कैकेयी को दिया । ११ जिस प्रकार भागीरथी और मन्दाकिनी नदियाँ (पवित्र) हैं, उसी प्रकार कौसल्या और सुमित्रा शुद्ध हृदय की स्त्रियाँ हैं । स्वप्न (तक) में वे मन में अणु मात्र भी मत्सर बिलकुल नहीं करतीं । १२ देखो, जो लोग अत्यन्त कुटिल होते हैं, उन्हें स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता । कोई भी लोग उनका कभी भी आदर नहीं करते । वे हमेशा अपकीर्ति (बदनामी) के योग्य होते हैं । १३ अस्तु (तत्पश्चात्) वसिष्ठ ने उन्हें तीर्थ दिया । (उन) तीनों ने पिण्ड खा लिया । लेकिन कैकेयी के गले में पिण्ड अटक गया और वह बहुत व्याकुल हो गयी । ८४ फिर वसिष्ठ ने तीर्थ सींच दिया, तो पिण्ड (गले के) अन्दर उतर गया । तब राजा दशरथ आनन्दित हो गया । उसने बहुत दान दिया । १५ वस्त्र, आभूषण,

ऋषी पावले स्वस्थाना । शृंगीआदिकरुनि । १६ तिघी राण्या जाहल्या गर्भस्थ । आनंदला राजा दशरथ । म्हणे माझे भाग्य उदित । दिसतें पुढें येथोनि । १७ घारीनें जो पिंड झडपिला त्याचा वृत्तांत काय जाहला । श्रोतयांनीं आक्षेप केला । कथा समूळ सांगा पां । १८ तरी केसरी नामें वानर । त्याची स्त्री अंजनी सुंदर । ऋष्यमूकपर्वतीं घोर । तप करीत बैसली । १९ सात सहस्र वर्षपर्यंत । मौन धरोनि शुचिष्मंत । आराधिला उमाकांत । प्रसन्न जाहला तपांतीं । २० म्हणे-अंजनी माग इच्छित । येरी म्हणे देई अक्षय सुत । परम प्रतापी यशवंत । महाभक्त वज्रदेही । २१ मग बोले उमावर । अकरावा जो मी महारुद्र । तुझे उदरीं अक्षय अवतार । धरितों अंजनी जाण पां । २२ ऐकें शुभवदने अंजनी । तूं अंजुळीपात्र पसरुनी । बैसैं सावध माझे ध्यानीं । अंतर्दृष्टी करुनियां । २३ सुटेल अद्भुत प्रभंजन । साक्षात् लोकप्राणेश आपण । प्रसाद

विपुल दक्षिणा देकर ब्राह्मणों का गौरव किया । (तदनन्तर) शृंगी आदि सभी ऋषि अपने-अपने स्थान गये । १६

तीनों रानियाँ गर्भवती हो गयीं । तो राजा दशरथ आनन्दित हो गया । उसने सोचा—अबसे आगे मेरा भाग्य उदित होता दिखता है । १७ श्रोताओं ने शंका (उपस्थित करके) प्रश्न पूछा, 'चील ने जो पिण्ड छीन लिया, उसकी स्थिति क्या हो गयी?—यह आरम्भ से कहो ।' १८ (तो सुनो)—केसरी नामक एक वानर था । उसकी स्त्री अंजनी सुन्दर थी । वह ऋष्यमूक पर्वत पर कठोर तप करती हुई बैठी थी । १९ शुद्ध आचरणवाली (अंजना) ने मौन धारण करके सात हजार वर्ष तक उमापति शिव की आराधना की—(इस) तप के अन्त में वह प्रसन्न हो गया । २० उसने कहा, 'अंजनी, अपना इच्छित (मनचाहा वर) माँगो।' तो उसने कहा, 'मुझे अक्षय (अजर-अमर), परम प्रतापी, कीर्तिशाली, महान भक्त, वज्र के समान दृढ़ शरीरधारी पुत्र दो ।' २१ तब उमापति शिव ने कहा—'हे अंजना, यह समझ लो कि मैं, जो ग्यारहवाँ महारुद्र हूँ, तुम्हारे उदर (गर्भ) से अक्षय अवतार धारण करूँगा । २२ हे शुभवदना अंजनी, तुम अपनी अंजलि रूपी पात्र को फैलाकर मेरा ध्यान करती हुई, अन्तर्दृष्टि होकर सावधान बैठो । २३ अद्भुत रूप में वायु चलेगा—लोगों के प्राणों का ईश्वर वह प्रत्यक्ष स्वयं प्रसाद लाकर देगा, उसे तुम त्वरित खा लो ।' २४ (यह कहकर) शिव अपने स्थान की ओर गया ।

देईल आणोन । तो तू भक्षीं अविलंबें । ४ स्वस्थळा गेला
 शूलपाणी । ध्यानस्थ बैसली अंजनी । नयन झांकोनि निज मनीं ।
 ब्रह्मानंदें उचंबळें । ५ तंव कैकयीहातींचा पिंड झडपोनि ।
 घारी नेत असतां गगनीं । तों चंड समीरें ते क्षणीं । पिंड मुखींचा
 आसुडिला । ६ तो अंजनीच्या करांत । आणोन घातला
 अकस्मात । तो तत्काळ ती भक्षित । शिवस्मरण करोनियां । ७
 घारी ते देवांगना वहिली । नृत्य करितां चांचरी गेली । मग
 विधीनें शापिली । घारी होई म्हणोनि । ८ मग ते सुवर्चसा
 नामें देवांगना । लागे कमलोद्भवाचे चरणा । विधि म्हणे-
 दशरथ राणा । अयोध्येचा नृपवर । ९ त्याच्या मखसमयीं
 पिंड झडपितां । उद्धरसील तू तत्त्वतां । अंजनीकरीं पिंड
 पडतां । निज स्थाना येसी तू । २१० असो घारी ब्रह्मवरें-
 करुनि । उद्धरोनि पावली स्वस्थानीं । इकडे नवमास भरतां
 अंजनी । प्रसूत जाहली तेधवां । ११ ऋषिपत्न्या पाहती ते
 वेळां । बळिया तो बाळ जन्मला । कीं वासरमणि प्रकटला ।
 वानरवेषें देदीप्य । १२ विद्युत्प्राय कुंडलें झळकती । गंडस्थळीं

इधर अंजनी आँखों को बन्द किये, लेकिन अपने मन में ब्रह्मानन्द से उमड़ती
 हुई ध्यानस्थ बैठी । ५ तब कैकेयी के हाथ से पिण्ड छीनकर चील
 आकाश मार्ग से ले जा रही थी, तो उसे प्रचण्ड वायु ने उसके मुख से
 (मानो खींचकर) नीचे गिरा दिया । ६ और यकायक उसे अंजनी के
 हाथों (की अंजलि) में डाल दिया । उसने शिवजी का स्मरण करते हुए
 उसे तत्क्षण खा डाला । ७ (वस्तुतः) वह चील पहले (कोई) देवांगना
 (अप्सरा) थी, जो नृत्य करते समय लड़खड़ा गयी । तो विधाता ने उसे
 चील हो जाने का अभिशाप दिया था । ८ तदनन्तर वह सुवर्चसा नामक
 अप्सरा विधाता के चरणों में पड़ी तो उसने (विधाता ने) कहा, 'दशरथ
 अयोध्या का राजा है । उसके यज्ञ के समय पिण्ड को छीन लेनेपर सचमुच
 तुम्हारा उद्धार होगा और अंजनी के हाथ में पिण्ड के गिर पड़ते ही तुम
 अपने स्थान लौटोगी ।' २०९-२१० अस्तु । ब्रह्माजी के वर के अनुसार
 चील का उद्धार होकर वह अपने स्थान (को) प्राप्त हो गयी । ११ उस
 समय ऋषिओं की स्त्रियों ने देखा कि एक बलवान् (हृष्ट-पुष्ट) बालक
 का जन्म हुआ—मानो सूर्य ही देदीप्यमान वानर के वेष में प्रकट हो गया
 हो । १२ उसके कुण्डल विजली की भाँति चमकते थे उनका प्रकाश उसके
 गण्डस्थल पर पड़ता है । उसका कौपीन (लंगोट) निश्चय ही दृढ़ता से

पडली दीप्ती । दृढ कौपीन निश्चितीं । कटिप्रदेशीं मौजी झळके । १३ तळपतसे यज्ञोपवीत । ऐसें वानररूप अद्भुत । मुखीं पुच्छाग्रीं आरक्त । वर्ण दिसत प्रवालसम । १४ परम क्षुधाक्रांत बाळ । चहूंकडे पाहे चंचळ । तों अंजनी उतावेळ । फळें गेली आणावया । १५ रुदन करी क्षुधित बाळ । तों आरक्त दिसे सूर्यमंडळ । म्हणे-हें दिसे उत्तम फळ । उडे चपळ मारुती । १६ पिंजारल्या रोमावळी । सिंहनादें गर्जे निराळीं । दिग्गजांचीं बैसळीं टाळीं । आंदोळली वसुंधरा । १७ स्फुरण दाटलें थोर । गाजवी पुच्छाचा फडटकार । मार्गे अंगवातें तरुवर । उन्मळोनि जाती आकाशीं । १८ चपळ पदद्वय तैसेच हस्त । प्रतापें झेंपावे गगनांत । उड्डाणावर उड्डाण घेत । जात आदित्य लक्षोनियां । २१९ कीं उर्वीवरोनि सुपर्ण । जाय वैकुण्ठील लक्षून । तैसाचि अंजनीहृदयरत्न । भानुमंडळा आटोपी । २२० मनोवेगासी मार्गे टाकुनी । हनुमंत वेगें जात गगनीं । तों लोकप्राणेश धांवुनी । धरीन म्हणे स्वपुत्रा । २२१

बँधा है और कमर में मूजी (मुंज नामक घास की करधनी) झलकती है । १३ उसका जनेऊ दमकता है, मुख और पूँछ में प्रवाल का-सा लाल वर्ण झलकता है—इस वानर का ऐसा अद्भुत रूप है । १४ यह बालक भूख से अति व्याकुल हो गया; वह चारों ओर चंचल नज़र से देखने लगा, तो अंजनी उतावली हो फल लाने के लिए गयी । १५ इधर यह भूखा शिशु रोने लगा । उसे लाल-लाल सूर्य-मण्डल दिखायी दिया । उसने सोचा—यह तो (कोई) बढ़िया फल दिखता है । (उसे लेने के हेतु) मारुती चपलतापूर्वक उड़ गया । १६ उसके बाल बिखर गये । वह आकाश में सिंहनाद करके ऐसे गरज उठा कि दिग्गजों के कान बहरे हो गये और पृथ्वी कम्पित हो उठी । १७ (उसमें) आवेग तीव्रतापूर्वक भर आया । वह (अपनी) पूँछ से फड़फड़ आवाज करता था । पीछे उसके शरीर से (वेगपूर्वक आगे बढ़ने के कारण) निर्मित हवा (की लहर) से वृक्ष उखड़कर आकाश में (उड़) जाते थे । १८ उसके दोनों पाँव वैसे ही हाथ चपल थे । वह प्रताप (वीरतापूर्वक) आकाश में (आगे) झपटता था । वह उड़ान पर उड़ान भरता हुआ सूर्य को लक्ष्य (बना) कर जा रहा था । २१९ अथवा पृथ्वी पर से गरुड़ बैकुण्ठलोक को लक्ष्य करके (बहुत वेगपूर्वक) जाता है, वैसे ही अंजनी के हृदय का यह रत्न मारुती सूर्यमण्डल की ओर जाकर उसे अपने अधीन कर गया—सूर्यमण्डल तक पहुँच गया । २२०

किबा प्रयोजन हुआ आछे आगमन * शुनि दशरथ पाछे बुलिला बचन
 आपुनि मिलिला आसि मोहोर गूहत * नजानोहो मइ भाग्य करि आछो कत
 त्रिभुवने नाहि तुमि हेन महाराज * आदेशियो मोक मइ करो किबा काज ५१५
 शुनियो नृपति मोर नाहिके सन्तान * ऋष्यशृंग महामुनि आछे तयु स्थान ५१६
 तेहे यज्ञ कराइलेसे हैबेक तनय * तांक निबे प्रति आसि आछो महाशय
 शुनि लोमपादे ऋष्यशृंगक आनिल * नमस्कार करि दुयो राजा सादरिल १७
 सुवर्णर आसन ऋषिक आनि दिला * दुयो राजा विस्तर ऋषिक सन्तोषिला
 लोमपादे बुलिलन्त बचन बिनय * एन्ते दशरथ राजा हुयो परिचय १८
 प्राणसम एन्ते मोर बान्धव बिबित्र * कत कोटि पुण्येसे इहांक पाइलो मित्र
 इहाने दुहिता शान्ता मागिया आनिलो * यत्न करि आनिया तोमात बिहा दिलो १९
 एन्तेसे जानिबा निज श्वसुर तोमार * करियोक ऋषि आवे आंक उपकार
 मनत अमुख आन नाहिके तनय * सिहेतु तोमाक राजा करिल आश्रय २०
 शुनि मुनि ऋष्यशृंग भेला सुप्रसन्न * शान्ता समन्विते भेला चलिबाक मन
 शान्तार कौतुक आति पितृक देखिया * मावक देखिते दशगुणे भेल दिया २१
 देखि लोमपादक आश्वासि दशरथ * शान्ता समे ऋषिपुत्र गैलन्त लगत
 पात्र पुरोहित सैन्य समे नृपवर * त्वरित गमने पाइला अयोध्या नगर २२
 शान्ता आसिबार शुनि तिनि महादई * कौशल्या सुमित्रा शान्ती सुन्दरी कैकेयी
 हरस फरस करि आसिल बजाइ * गलाबान्धि धरिला शान्ताक लग पाइ २३
 निलन्त गूहक हरिषर नाइ पार * शान्ता सती करिला मातृक नमस्कार
 सबे महादई आसि शान्ताक बेदिला * अन्तःपुर माजे महा आनन्द मिलिला २४

तुम स्वयं आकर मेरे घर मुझसे मिले, न जाने मेरा भाग्य कितना प्रबल है।
 त्रिभुवन में तुम जैसा कोई महाराज नहीं, मुझको आदेश करो कि मुझको कौन सा
 कार्य करना है ॥ ५१५ ॥ किस प्रयोजन से तुम्हारा यहाँ आगमन हुआ ?” यह
 सुनकर दशरथ ने कहा, हे राजा सुनो, मेरे कोई सन्तान नहीं। महामुनि ऋष्यशृंग
 तुम्हारे स्थान पर हैं ॥ ५१६ ॥ उनसे यज्ञ कराने पर पुत्र होगा। हे महाशय, उन्हीं
 को ले जाने के लिए मैं आया हूँ। यह सुनकर लोमपाद ऋष्यशृंग को ले आये और
 दोनों को राजा ने सादर नमस्कार किया ॥ १७ ॥ सुवर्ण का आसन लाकर ऋषि
 को दिया गया। दोनों राजाओं ने ऋषि को पर्याप्त सन्तुष्ट किया। लोमपाद ने
 विनयपूर्वक कहा, यह राजा दशरथ हैं, इनसे परिचय प्राप्त करें ॥ १८ ॥ यह
 मेरे प्राण के समान प्रिय मित्र हैं। अनन्त कोटि पुण्यों के बल पर मैंने इनको मित्र
 रूप में पाया, इन्हीं की पुत्री शान्ता को मैं माँग कर लाया था और यत्नपूर्वक लाकर
 तुम्हारे साथ उसका विवाह कर दिया ॥ १९ ॥ इनको अपना श्वसुर मानना। हे
 ऋषि इनका उपकार करना। पुत्र न होने से इनके मन में बड़ी पीड़ा है। इसी
 कारण ये राजा तुम्हारी शरण में आये हैं ॥ २० ॥ यह सुनकर मुनि ऋष्यशृंग अत्यन्त
 प्रसन्न हुए और शान्ता को साथ लेकर चलने के लिए निश्चय किया। पिता को
 देखकर शान्ता को बड़ा हर्ष हुआ। माँ को देखने के लिए उसका हृदय दसगुना
 प्रसन्न हो उठा ॥ २१ ॥ लोमपाद की अनुमति पा दशरथ को आश्वासन देने के लिए
 ऋषिपुत्र शान्ता के साथ चल पड़े। पात्र, पुरोहित और सेना के साथ कुर्ती से चल
 कर राजा दशरथ अयोध्या नगर पहुँच गये ॥ २२ ॥ शान्ता के आने की चर्चा
 सुनकर कौशल्या, शान्त सुमित्रा और सुन्दरी कैकेयी ये तीनों रानियाँ हर्षोत्फुल्ल होकर
 वहाँ आ गईं शौर शान्ता को गले से लगा लिया ॥ २३ ॥ घर में हर्ष का वार-पार

समस्तरे आनन्द शान्ताक लाग पाइ * तान्त बिनै कारो आर पुत्र जीउ नाइ
 एतेके शान्ताक पाया सबे शत मारे * वस्त्र अलंकार आनि दिला गावे गावे २५
 दशरथ राजा ऋष्यशृंगक आनिया * करिला बिस्तर पूजा पाद्य-अर्घ्य दिया
 आन्ते हन्ते हैबे मोर मनोरथ सिद्धि * भैलन्द आनन्द जेन पाया नवनिधि २६
 एहि बुलि अर्च्चा करिलन्त बहुतर * जेन वृहस्पतिक पूजिला पुरन्दर
 करिलन्त नृपति अनेक सम्भाषण * पूजा पाया ऋषि हरिष भैल मन २७
 अयोध्याते रहिलन्त शान्ताये सहित * जेन देवगुरु स्वर्गपुरे भैला थित
 अनन्तरे नृपति यज्ञर घोरा आनि * विधिवते अभिषेक करि महामानी २८
 रखीया कटक दिला लगत अनेक * मेलि दिया घोराक पालिला बरिषेक
 बसन्त प्रवेश भैला गुचिया शिशिर * आरम्भिला यज्ञ पाया आदेश मुनिर २९
 बशिष्ठे कहिला यत यज्ञर संभार * अनेक देशर द्रव्य आनिला अपार
 सुमंत्र मंत्रीक दशरथे आदेशिला * अनेक यज्ञेर द्रव्य सुमंत्र आनिला ३०
 सुवर्ण रजत रत्न अनेक भाजन * कस्तुरी कुंकुम लखि अगुरु चन्दन
 मुकुता प्रबाल मणि माणिक कर्पूर * दिव्य वस्त्र अलंकार आनिला प्रचुर ३१
 आनो नाना द्रव्य आनिलन्त बहुतर * शुभक्षणे यज्ञ आरम्भिला नृपवर
 मनत हरिषि शुनि यज्ञर कथाक * आसिला अनेक महाऋषि अयोध्याक ३२
 काश्यप कपिल कारु कण्व कात्यायण * वामदेव देवल दुर्वासा तपोधन
 राम पराशर भृगु भार्गव गौतम * अत्रि विश्वामित्र त्रित मुनि नरोत्तम ३३

न रहा । सती शान्ता ने माँ को प्रणाम किया । सभी महादेवियों ने आकर शान्ता को घेर लिया और अन्तःपुर में महान् आनन्द छा गया ॥ २४ ॥ शान्ता को निकट पाकर सभी को आनन्द मिला । उसके बिना, किसी के भी कोई दूसरा पुत्र या कन्या नहीं है । ऐसी शान्ता को पाकर सभी माताएँ वस्त्र और अलंकार लाकर देने लगीं ॥ २५ ॥ राजा दशरथ ने ऋष्यशृंग को लाकर पाद्य-अर्घ्य आदि देकर बड़ी पूजा की कि इन्हीं से मेरी मनोकामना पूरी होगी । मानों नयी निधि मिली हो इस प्रकार उनको आनन्द हुआ ॥ २६ ॥ यह कहकर अनेक प्रकार से उन्होंने उनकी इस प्रकार अर्चना की मानों इन्द्र वृहस्पति की पूजा कर रहा हो । नृपति ने उनसे अनेक प्रकार से सम्भाषण किया । पूजा पाकर ऋषि का मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥ २७ ॥ अयोध्या में शान्ता के साथ ऋष्यशृंग इस प्रकार टिक गये मानों स्वर्ग में देवगुरु स्थित हो गये । इसके अनन्तर राजा दशरथ ने यज्ञ का घोड़ा लाकर विधिपूर्वक उसका अभिषेक किया ॥ २८ ॥ उसकी रक्षा हेतु साथ में बहुत बड़ी सेना दी । सेना ने प्रस्थान किया और वर्ष भर तक सैनिक लोग घोड़े की रक्षा करते रहे । जाड़े के अन्त में जब वसन्त आया तो मुनि का आदेश पाकर यज्ञ आरम्भ कर दिया गया ॥ २९ ॥ यज्ञ के सामान के लिए जब वशिष्ठ से कहा गया तो वे कितने ही देशों के असंख्य द्रव्य ले आए । मंत्री सुमंत्र को दशरथ ने आज्ञा दी तो सुमंत्र भी यज्ञ के बहुत से द्रव्य ले आए ॥ ३० ॥ सोना, चाँदी, कितने ही प्रकार के रत्न, कस्तूरी, कुंकुम, अगुरु, चन्दन, मोती, मूंगा, मणि, माणिक्य, कपूर, सुन्दर वस्त्र और अलंकार आदि सभी पदार्थ मँगाये गये ॥ ३१ ॥ 'विभिन्न द्रव्य लाओ' जब यह कहा गया तो अनेक द्रव्य लाये गये । शुभघड़ी पर राजा दशरथ ने यज्ञ आरम्भ किया । यज्ञ हो रहा है यह सुनकर मन में हर्षित होकर बहुत सारे महर्षि अयोध्या में आ पहुँचे ॥ ३२ ॥ काश्यप, कपिल, कारु, कण्व, कात्यायन, वामदेव, देवल, तपोधन, दुर्वासा, राम, पराशर, भृगु, भार्गव, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, त्रित तथा नरोत्तम मुनि (आए) ॥ ३३ ॥ मरीचि, च्यवन,

मरीचि च्यवन चन्द्राविन्दु भरद्वाज * आंगिरस अगस्ति नारद ऋषिराज
 सनक सनन्द कन्द सनतकुमार * पुलस्ति पुलह सनातन बेदसार ३४
 आर्षिसेन मुनि मार्कण्डेय सिद्धेश्वर * इसब प्रमुख्य महामुनि निरन्तर
 आसिला कौतुके नृपतिर यज्ञस्थान * दशरथे सबको करिला बहुमान ३५
 ऋषि ऋष्यशृंग पांचे हुआ शुद्धचित्त * राजाक करिला महा यज्ञत दीक्षित
 अभिषेक हुया राजा पात्रक बरिला * वस्त्र अलंकार गन्ध चन्दने अच्छिला ३६
 कुशहस्त हुआ राजा विष्णुक सुमरि * सभार्ये बसिला चित्त सावधान करि
 आठ पात्र बसिला राजार अनुक्रमे * जार जेन काज्ज ताक चिन्तन्त नियमे ३७
 ऋष्यशृंग मंत्र पढ़ि यज्ञ आरम्भिला * नृपतिर पुत्र हेतु संकल्प करिला
 मंत्र पढ़ि मुनिसमे करिला आह्वान * पशुपति देवे समे आइला यज्ञस्थान ३८
 बिभांडे देखन्त ऋष्यशृंग नाइ घरे * ध्यान करि तेखने जानिला मुनिबरे
 दशरथ राजा मोर निलेक तनय * पुत्र प्रयोजने यज्ञ करे महाशय ३९
 ध्याने जानि पांचे बिभांडक महाऋषि * अयोध्याक आसिलन्त परम हरिषि
 बिभांडक ऋषिक देखिया नरेश्वर * पाछ अर्घ्य दिया तांक करिल सादर ४०
 बिभांडक देखिया सकले मुनिगण * सादरिला बुलि तांक मधुर वचन
 करिलन्त बिभांडके प्रशंसा राजाक * पुत्र समे बसिलन्त यज्ञ करिबाक ४१
 करन्त हरिषे यज्ञ यत् मुनिगण * थाने थाने करिलन्त द्रव्य निरूपण
 हुया ब्रह्मचारी मन सावधान करि * भौला शुद्ध प्रथमते बिष्णु बिष्णु स्मरि ४२
 मूल मंत्र उच्चारिला ब्राह्मण सकल * निरन्तरे उच्चारिला स्वस्ति सुमंगल
 सांगोपांगे पूजिलन्त यज्ञ पुरुषक * दशरथ राजा मने चिन्तय पुत्रक ४३

चन्द्राविन्दु, भरद्वाज, आंगिरस, अगस्त्य, ऋषिराज नारद, सनक, सनातन (आए) ॥ ३४ ॥ मुनि आर्षिसेन, मार्कण्डेय, सिद्धेश्वर—ये सारे प्रमुख मुनि (भी) नृपति के यज्ञस्थल पर सानन्द आए। दशरथ ने सभी का बड़ा सम्मान किया ॥ ३५ ॥ इसके पश्चात् शुद्धचित्त होकर ऋषि ऋष्यशृंग ने राजा को महायज्ञ में दीक्षित किया। राजा का अभिषेक हुआ और उन्होंने पात्र का वरण किया और वस्त्र अलंकार तथा गन्ध-चन्दन आदि से अर्चना की ॥ ३६ ॥ राजा ने विष्णु का स्मरण कर हाथ में कुश धारण किया और चित्त को सावधान कर यज्ञमंडप में बैठ गये। राजा के साथ क्रमानुसार आठ पात्र बैठे। जिसका जो कार्य है उसे वह नियमपूर्वक करने लगा ॥ ३७ ॥ ऋष्यशृंग ने मंत्र पढ़कर यज्ञ आरम्भ किया। राजा की पुत्र-प्राप्ति के हेतु संकल्प किया। मंत्र पढ़कर मुनियों के साथ उन्होंने आवाहन किया तो अन्य देवताओं के सहित यज्ञस्थान में महादेव प्रकट हो गये ॥ ३८ ॥ (बिभांडक-आश्रम में) बिभांडक ने देखा कि ऋष्यशृंग घर में नहीं है। उसी समय ध्यान द्वारा मुनिवर ने [लोमपाद के अंगदेश का इतिहास जाना। पश्चात् यह भी] जान लिया कि दशरथ राजा मेरे पुत्र को ले गया है। अपने पुत्र के प्रयोजन से वह महाशय यज्ञ कर रहे हैं ॥ ३९ ॥ ध्यान से यह जान लेने के पश्चात् बिभांडक महाऋषि बड़े आनन्द से अयोध्या चले आए। बिभांडक ऋषि को देखकर नृपवर ने पाछ-अर्घ्य आदि देकर उनका स्वागत किया ॥ ४० ॥ बिभांडक को देखकर सभी मुनियों ने उनसे सादर व मधुर सम्भाषण किया। बिभांडक ने राजा की प्रशंसा की और पुत्रेष्टि यज्ञ करने के लिए बैठ गये ॥ ४१ ॥ सारे मुनि हर्ष से यज्ञ करने लगे। स्थान-स्थान पर विविध द्रव्यों का निरूपण किया। चित्त को सावधान कर वे ब्रह्मचारी बने और आरम्भ में विष्णु का स्मरण कर वे शुद्ध हुए ॥ ४२ ॥ सारे ब्राह्मण मूलमंत्र का उच्चारण कर

पुत्रमंत्र जप राजा करे मने मने * अग्नि संस्थापन करिलन्त शुभक्षणे
 अनन्तरे द्विजगणे आहुति करिल * मुख माधवे आदिकांड विरचिल ४४
 नमो नमो नारायण चरणत धरि * दशरथ गृहे रामरूपे अवतरि
 निजगुणे जगतर पूरिलाहा मन * बोला राम राम सबे सभासदगण ५४५

दशरथर घरत नारायणर चारि अंशे जन्म वृत्तान्त

दुलड़ी

राजा लंकेश्वरे उपद्रव करे जिनिथा ए त्रिभुवन ।
 बले पराक्रमे इतिनि लोकत सम नाहि एकोजन ॥
 तार पराभव सहिते नपारि त्रिदश देवतागण ।
 बासवे सहित एकत्रे बसिया करिलन्त आलोचन ॥ ५४६
 रावणर हन्ते नाहिके निस्तार बिने देव गदाधर ।
 ब्रह्माये आमार मिलाइला प्रमाद रावणक दिया वर ॥
 इतिनि लोकत त्रिदश देवत रावण अवध्य भैल ।
 नर बानरत हैब सिटो हत ब्रह्मा वर छिद्र थैल ॥ ४७
 पुत्रर निमित्ते करे महायज्ञ दशरथ नृपवर ।
 एहि समयते ईश्वर विष्णुक पठाइ दिओं तान घर ॥
 हेन युक्ति करि क्षीरोदधि तीरे गलन्त देवतागण ।
 लक्ष्मी समन्विते क्षीरोद सागरे आछा प्रभु नारायण ॥ ४८
 अव्यक्त स्वरूपे आछन्त ईश्वर नुहिके कारो गोचर ।
 जय जय हरि बुलि हुलस्थूल करे देव निरन्तर ॥

निरन्तर मांगलिक स्वस्ति पाठ का उच्चारण करने लगे । सभी लोग यज्ञपुरुष की पूजा करने लगे और राजा दशरथ अपने मन में पुत्र के विषय में विचार करने लगे ॥ ४३ ॥ राजा मन ही मन पुत्र-मंत्र का जाप करने लगे । शुभघड़ी पर अग्नि की स्थापना की । इसके अनन्तर द्विजों ने आहुति दी । मुख माधव ने आदिकांड की रचना की ॥ ४४ ॥ हे नारायण, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ, तुम्हारे चरणों का स्पर्श करता हूँ । दशरथ के गृह में तुम राम के रूप में अवतार ले रहे हो । तुमने अपने गुणों के द्वारा संसार की कामना पूर्ण की । हे सभासदगण, तुम सभी लोग राम का नाम लो ॥ ५४५ ॥

दशरथ के घर में नारायण का चार अंशों में जन्म लेने का विवरण

इस त्रिभुवन पर विजय प्राप्त कर राजा लंकेश्वर उपद्रव मचाने लग गया । तीनों लोकों में बल और पराक्रम में उसके समान कोई भी नहीं था । उसके हाथों पराभव सहन न कर करने से देवता इन्द्र के साथ बैठकर विचार करने लगे ॥ ५४६ ॥ बिना देव गदाधर (नारायण) के रावण के हाथों से किसी का निस्तार नहीं । हमारे ब्रह्मा ने रावण को वर देकर और मुसीबत खड़ी कर दी है । तीनों लोकों में देवताओं के लिए रावण अवध्य बन गया है । वह नर-वानर के द्वारा ही मारा जायगा, ब्रह्मा ने अपने वर में इतनी ही गुंजाइश रखी है ॥ ४७ ॥ पुत्र के निमित्त नृपवर दशरथ यज्ञ कर रहे हैं, इसीलिए इसी समय भगवान् विष्णु को उनके घर भेज दिया जाय । ऐसी सलाह करके देवता क्षीरसमुद्र के तट पर गये । प्रभु नारायण क्षीरसमुद्र में

नमो नारायण जगत कारण सनातन लक्ष्मीपति ।
 हुयोक्त सद्य प्रभु कृपामय करोहो पावे प्रणति ॥ ४९
 तोमार चरणे आभि देवगणे शरण लैलो सम्प्रति ।
 तुमिसि ईश्वर इटो जगतर तुमि बिने नाहि गति ॥
 हुयो सुप्रसन्न दियो दर्शन गुचोक आमार दुख ।
 त्रिदश सकले देखो कौतूहले तोमार प्रसन्न मुख ॥ ५०
 क्षीर सागरर तीर जुरि सबे हरिक देखिबो मने ।
 जय जय हरि बुलि उच्च करि डाकय देवतागणे ॥
 देवर कल्लोल जय जय रोल मुनिया कृपा मिलिल ।
 हुया दायायुत रूप अदभुत देवताक देखा दिल ॥ ५१
 कोटि एक शशि सूर्यतो करिया शरीरर ज्योति बले ।
 आसिल रामक लागिल चमक देखिला देव सकले ॥
 कृष्णक आकलि धरि कृतांजलि माथार उपर करि ।
 कृष्णर आगते परि दंडवते रवे जय जय हरि ॥ ५२
 सुप्रसन्न विधि भैल कार्यसिद्धि दिला देखा नारायण ।
 श्रीमुख देखि भैला सबे सुखी यतेक त्रिदशगण ॥
 येनरूपे देखा दिलन्त देवक कहिबे कार शक्ति ।
 सर्पर फणात चरण थापिया आछा त्रिजगतपति ॥ ५३
 सर्पर फणात मणि ज्योति करे अरुण चरण तले ।
 सुकोमल पद्म कोषक जिनिया चरण युगल जले ॥

लक्ष्मी के साथ विराजमान थे ॥ ४८ ॥ अव्यक्त रूप लिये भगवान् विष्णु वहाँ पर विराजमान थे, किन्तु किसी को दृष्टिगोचर नहीं हुए । सभी देवता वहाँ पहुँचकर जय जय हरि कर निरन्तर शब्द करने लगे । (कहने लगे—) हे नारायण, जगत्कारण सनातन लक्ष्मीपति तुमको प्रणाम है । हे कृपामय प्रभु, हम तुम्हारे चरणों में प्रणाम करते हैं, तुम हम लोगों पर सद्य हो जाओ ॥ ४९ ॥ इस समय हम देवता तुम्हारे चरणों की शरण में आए हैं । तुम इस संसार के ईश्वर हो, तुम्हारे बिना कोई गति नहीं । सुप्रसन्न होकर हमलोगों को दर्शन दो, हमलोगों का दुख दूर हो । सारे त्रिदश (देवगण) तुम्हारे प्रसन्न मुख का कौतूहल से दर्शन करें ॥ ५० ॥ हरि को देखने की इच्छा लिये क्षीर-सागर के तट पर इकट्ठे देवता ऊँची आवाज में हरि हरि पुकारने लगे । देवताओं के कल कल शब्द एवं जय जय रव से दयालु होकर अदभुत रूप धारण कर (हरि ने) दर्शन दिया ॥ ५१ ॥ करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा को एकत्र कर जैसी ज्योति निकलती है ऐसा ज्योतिर्मय शरीर (लेकर) वे जल के ऊपर आये, उन्हें देखकर सभी देवता आश्चर्य करने लगे । हमलोग विष्णु का दर्शन कर रहे हैं यह सोचकर सबने हाथ जोड़ सिर के ऊपर उठाये । विष्णु के आगमन पर वे दंडवत् प्रणाम करने लगे और जय जय हरि का शब्द करने लगे ॥ ५२ ॥ विधाता सुप्रसन्न है, काम बन गया, नारायण ने दर्शन दे दिया, यह सोचकर जितने त्रिदश (देवगण) थे सभी श्रीविष्णु का श्रीमुख देखकर सुखी हुए । जिस प्रकार से उन्होंने देवताओं को दर्शन दिया उसका वर्णन करने की शक्ति किसमें है । साँप के फन पर पैर धर कर त्रिजगत्पति खड़े हैं ॥ ५३ ॥ श्रीविष्णु के लाल चरणों के तले साँप के फन की मणि जगमगा रही है । सुकोमल कमल-कोष को लजाने वाले चरण-युगल चमक रहे हैं । दशों उंगलियों में रत्न की अंगूठियाँ झलमला रही हैं । नाखून की मणियाँ चन्द्र की

दशो आंगुलित ज्वले मनोनीत रत्नर उज्वाटिचय ।
 चन्द्रर ज्योतिक जिनि आतिशय नख मणि प्रकाशय ॥ ५४
 मणि रत्नमय नुपुर ज्वलय चरण कमल माजे ।
 जंघा मनोहर उरु करीकर कटित किंकिणी बाजे ॥
 पाट मुनि पीत रतने रचित कंकालत कटिबन्ध ।
 ज्वले मनोहर नाभि सरोवर उदर आति सुचन्द ॥ ५५
 हृदये श्रीवत्स देखि अति स्वच्छ हार गज मुकुतार ।
 रत्न मणिचय ज्वलन्ते आलस्य जिलिमिलि पेचन्दार ॥
 आपादलम्बित गले बनमाला भ्रमरे बेड़िया रंजे ।
 कौस्तुभ मणिर प्रकाशे प्रभात सूर्यर ज्योतिक गंजे ॥ ५६
 नील मोलानर पावक निन्दिया शोभे बाहु चारिखान ।
 सुबलि बलित आजानुलम्बित देखिते आति सुठान ॥
 सुवर्णर तार बलया कंकण सुन्दर आंगुलि पान्ति ।
 आति सुबलित कुरि आंगुलित नखचन्द्र करे कान्ति ॥ ५७
 बाखरे रचित आंगुठि शोभित करे येन किशलय ।
 शंख चक्र गदा पद्म चारि हाते अनुक्रमे प्रकाशय ॥
 उशासते आति चलन्ते आलस्य उदरत तिनी रेखा ।
 कषति सोणार रेखा येन उरे लक्ष्मी देवी दिला देखा ॥ ५८
 सिंहबन्ध स्कन्ध चारु कम्बुकंठ चिबुक आति सुन्दर ।
 बन्दुलि पुष्पको निन्दि प्रकाशय अरुण चारु अधर ॥
 शरतर पूर्ण-चन्द्रको गंजिया प्रकाशे मुखमंडल ।
 ईषत् हसित अमृत बरिषे देखि मिले कौतूहल ॥ ५९

ज्योति से भी अधिक प्रकाशमयी हैं ॥ ५४ ॥ चरण-कमलों पर मणि-रत्न से जड़ित नुपुर शोभायमान हैं । हाथी की सूँड़ जैसा मनोहर जाँघ है और कटि में किंकिणी बज रही है । रत्नों से जड़ित पीले रंग के वस्त्र का कमरबन्द कमर से बँधा है । नाभि सरोवर सी प्रकाशमय है और उदर अत्यन्त शोभन है ॥ ५५ ॥ वक्ष पर गज-मोती का स्वच्छ हार और मणि-रत्न झिलमिलाते हैं । पैरों तक लटकती हुई वनमाला के चारों ओर भौरे गुंजन कर रहे हैं । कौस्तुभ मणि का प्रकाश प्रभात-सूर्य की ज्योति का तिरस्कार करता है ॥ ५६ ॥ नील-कमल के मृणाल को लजाकर चारों बाहु शोभायमान हैं जो कि जाँघ तक लम्बे हैं और देखने में अति सुडौल और सुन्दर हैं । स्वर्ण के तारों के बने कड़े और कंगन उनमें शोभा दे रहे हैं । ऊँगलियों की पाँति भी अति सुन्दर है । अति सुडौल बीस ऊँगलियों पर नखचन्द्र शोभायमान हैं ॥ ५७ ॥ रत्न से जड़ी आंगुठियाँ यों शोभित हो रही हैं मानों कर में कमल हों । चारों हाथों में क्रम से शंख चक्र गदा और पद्म शोभायमान हैं । श्वास के चलने से उदर पर तीन रेखाएँ यों दिखती हैं जैसे कसौटी पर सोने का दाग पड़ कर ही उड़ जाता है—मानों लक्ष्मी ने दर्शन दिया हो ॥ ५८ ॥ सिंह को बांधनेवाले कन्धे, सुन्दर शंख सा गला और अत्यन्त सुडौल ठोड़ी । लाल-कनेर के फूल को लजाते हुए लाल रंग के चारु अधर हैं । शरत् के पूर्ण-चन्द्र को तिरस्कार करता मुखमंडल प्रकाशमान है । उनके तनिक मुस्कान से मानों अमृत बरसने लगता और उसको देखने से आनन्द प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥ मोतियों की पाँति जैसे दाँत मुखको शोभित करते हैं । शरत् में

मुकुतार शारी जिनि दन्तपान्ति मुखको आति रंजय ।
 शरत सुजात प्रफुल्ल पद्मको नयनयुगे गंजय ॥
 नासा तिलफुल येन प्रकाशय सुवलिता भ्रुव दुई ।
 सुसम कपाले तिलक ज्वलय पूर्णचन्द्रो सम नुइ ॥ ६०
 चारु कम्बुकर्णे मकर कुंडल करे आति जलमल ।
 रत्ने विरचित किरीटि शिरत सूर्यर येन मंडल ॥
 कुटिल कुंडल अलंकार पंक्ति कान्ति करे कपालत ।
 प्रमत्त भ्रमरे येन मधुपान करे परि कमलत ॥ ६१
 शिरर उपरे चड़ामणि ज्वले सूर्य येन मूर्ति धरि ।
 श्याम शरीरक सजल जलद कदाचित्तो नुहि सरि ॥
 पीतवस्त्र येन सजल मेघत बिजुली भैल सुथिर ।
 कोटि कन्दर्पको दर्पचूर करि ज्वलन्ते आछे शरीर ॥ ६२
 पद्मपत्र सम दुखानि चरण राजहंस गति धीर ।
 ईषत हसित मुखचन्द्र ज्वले बचन आति गम्भीर ॥
 अमृत कोटित करिया सन्तोष सागर कोटि गम्भीर ।
 कोटि हेमवन्त गिरित करिया देख्य आति सुथिर ॥ ६३
 कोट कोटि महा महेन्द्रत करि श्री आति चमत्कार ।
 हेनय रूपक देखिया देवर आनन्दर नाहि पार ॥
 नमो नारायण देव सनातन तुमि अनाथर नाथ ।
 करा मोक दाया कृपादृष्टि चाया माया एरा जगन्नाथ ॥
 नामर आभास मात्रके तारिला महापापी अजामिल ।
 भक्तरसे मात्रे पूतनाको मोक्ष दिला देव दयाशील ॥ ६४

प्रस्फुटित उच्चकोटि के कमलों की भाँति दोनों नयन हैं । नथुने तिलफूल के आकार के और दोनों भौहें बड़ी ही सुललित हैं । चौरस माथे पर तिलक जगमगा रहा है, पूर्णचन्द्र भी उसके समान नहीं है ॥ ६० ॥ शंख जैसे सुन्दर कानों में मकर के आकार के कुंडल झलमलाते हैं । सिर पर रत्नों से जड़ा मुकुट है—मानों सूर्य का मंडल हो । बालों के टेढ़े-मेढ़े गुच्छे माथे पर यों शोभा देते हैं मानों बौराये हुए भौरे मधु पीने के लिए कमल पर टूट रहें हैं ॥ ६१ ॥ सिर पर चड़ामणि यों जगमगा रही है मानों सूर्य ने शरीर धारण कर लिया है किन्तु श्याम-शरीर रूपी जल भरे बादल को हटा नहीं पा रहा है । पीले रंग के वस्त्र मानों इस जल भरे बादल में स्थिर-बिजली की भाँति हैं । कोटि-कन्दर्प के दर्प को चूर्ण करता हुआ सुन्दर शरीर जगमगा रहा है ॥ ६२ ॥ दोनों चरण मानों कमल के पत्ते के समान हों, राजहंस जैसी मन्थर चाल है । इस प्रकार मुस्कान से मुखचन्द्र उद्भासित है, और वचन बड़े गम्भीर हैं । मानों कोटि अमृत से सन्तोष प्राप्त कर गंभीर कोटि समुद्र हो । कोटि हेमवन्त (हिमालय) गिरि जैसे स्थिर दिखाई पड़ रहे हैं ॥ ६३ ॥ कोटि कोटि महा-महेन्द्र से भी वह सौन्दर्य अत्यन्त चमत्कारी है । ऐसे रूप को देखकर देवताओं के आनन्द का ओर-छोर न रहा । हे नारायण, नमोनमः, तुम सनातन-देव हो, अनाथों के हो । हे जगन्नाथ, माया त्याग कर मेरी ओर कृपादृष्टि से देखो । केवल नाम के आभास पाते ही तुमने महापापी अजामिल को तार दिया । हे दयाशील देव, तुमने केवल भक्ति के कारण पूतना को मोक्षवान् किया ॥ ६४ ॥ इतना जानकर ही तुम्हारे चरणों में हमलोगों ने शरण ली है । [माधव कहते हैं—] केवल तुम्हारे चरण-कमलों

एतेक जानिया तोमार चरणे शरश करिलो सार ।
 केवल तोमार चरण पंकजे थाकोक रति आमार ॥
 तोमार भृत्यर भृत्यर भृत्यर भृत्य बुलि धरा मोक ।
 तेजि आन काम बोला राम राम यत समाजिक लोक ॥५६५

पद

अनन्तरे सर्पर नामिला नारायण * देवक समुखे बसिलन्त पद्मासन
 हातर पद्मक लक्ष्मी थैलन्त कोलात * ताहार उपरे थापिलन्त दुइ हात ५६६
 दुइ पादपद्म ताते थापिलन्त हरि * स्वामीर चरणे देवी धरिला सादरि
 लक्ष्मीर हातर शाखा ज्योति आति करे * प्रकाशे चरण सेइ शाखार उपरे ६७
 अव्यक्त ईश्वर हरि भैलन्त साक्षात * देखि ब्रह्मा आदिदेवे करि जोरहात
 अवनत माथे स्तुति करे देवगण * त्राहि त्राहि हरि लैलो तोमात शरण ६८
 तुमि बिने आमार नाहिके आन गति * चराचर जगतर् तुमि एक पति
 सृष्टिर् आदिते थाका तुमिसे केवल * पुनु स्रजिबाक जेवे भैला कौतूहल ६९
 कटाक्षे करिया प्रकृतिक सचेतन * कोटि कोटि ब्रह्मांड स्रजाहा नारायण
 अन्तर्यामीरूपे ताते प्रवेशिया हरि * कराहा बिहार नानाबिध रूप धरि ७०
 ब्रह्मारूप धरि स्रजा इतिनि भुवन * विष्णुरूप धरि करा सृष्टिक पालन
 रुद्ररूप धरि करा आपुनि संहार * एहि महा मोक्ष लीला कौतुक तोमार ७१
 मायार अधीन आमि जीव निरन्तर * तुमिसे केवल मात्र मायार ईश्वर
 मायाये मोहित हुआ आमि जीव यत * तोमार मूर्तिर केहो नजानोहो तत्व ७२

में मेरी मति बनी रहे । तुम्हारे दास के दास उनके भी दास रूप में मुझे ग्रहण करो । हे समाज के लोगो, सभी काम त्याग कर राम राम का उच्चारण करो ॥ ५६५ ॥

इसके अनन्तर नारायण सर्प से उतरे और देवताओं के सम्मुख कमलासन (की मुद्रा) में बैठे । हाथ के कमल को लक्ष्मी ने अपनी गोद में रख लिया और उर पर अपने दोनों हाथ रख दिये ॥ ५६६ ॥ उस पर हरि ने अपने दोनों चरणकमलों को रखा । देवी ने पति के चरणों को सादर थामा । लक्ष्मी के हाथों की शंख की बनी चूड़ियाँ (सुहागिन की चूड़ियाँ) अत्यन्त ज्योतिपूर्ण हैं—उन चूड़ियों पर चरण शोभा पाने लगे ॥ ६७ ॥ अव्यक्त ईश्वर नारायण से साक्षात् भेंट हो गई । यह देखकर ब्रह्मा आदि देवतागण हाथ जोड़े सिर झुकाये स्तुति करने लगे—हे हरि, त्राहि त्राहि, हम लोग तुम्हारी शरण में आए हैं ॥ ६८ ॥ तुम्हारे बिना हम लोगों का और कोई सहारा नहीं, सारे चराचर जगत् के तुम एक मात्र स्वामी हो । सृष्टि के आदि में केवल तुम्हीं थे, फिर तुमको सृष्टि करने का कौतूहल हुआ ॥ ६९ ॥ हे नारायण, प्रकृति को अपने कटाक्ष से सचेतन कर, तुमने कोटि कोटि ब्रह्मांडों का सृजन कर डाला । हे हरि उसमें अन्तर्यामी के रूप में प्रवेश कर विभिन्न रूप लेकर तुम विचरते हो ॥ ७० ॥ ब्रह्मा का रूप धारण कर तीनों लोकों का तुमने सृजन किया, विष्णु का रूप धारण कर तुम इस सृष्टि का पालन करते हो, रुद्ररूप धारण कर स्वयं इसका विनाश करते हो । यह महान् मोक्ष-लीला तुम्हारे कौतुक का विषय है ॥ ७१ ॥ हम सारे जीव निरन्तर माया के अधीन हैं और तुम केवल माया के ईश्वर हो ।

कमंडलमां जळ भर्युं, ते शब्द प्रगटचो त्यांहे,
 त्यारे राये जाण्युं मृग को, आव्यो सरोवरमांहे । २५ ।
 राये तत्क्षण बाण मूक्युं, शब्दवेधी जेह,
 ते श्रवणने वाग्युं तदा, कही राम पडियो तेह । २६ ।
 त्यारे दशरथ गया पासे, द्विज पडचो जे ठाम,
 दीन थई कहे श्रवणने, में कर्युं अघटित काम । २७ ।
 त्यारे श्रवण कहे जई पाओ जळ, मुज मातपिताने जाण,
 ए वृद्धने तमे पाळ जो, एवं कहेतामां गया प्राण । २८ ।
 त्यारे कमंडळ लेई राय आव्या, वृद्ध केरी पास,
 बोल्या विना जळ आपियुं त्यारे, थयां चित्त उदास । २९ ।
 अरे ! श्रवण क्यम नथी बोलतो ? तुंने क्रोध नहि कोई दीन,
 जळपान नहि करीए अमो, बोल्या विना चित्त भिन्न । ३० ।
 त्यारे राय वळतुं बोलिया, में श्रवण मार्यो ठाम,
 अज तणो हूं पुत्र दशरथ, अयोध्या मुज गाम । ३१ ।

तो काँवर को सरोवर के तट पर रखकर वह (श्रवण कमण्डलु में) पानी भरने (भरकर लाने) के लिए गया । २४ । कमण्डलु में (जब) पानी भरा, तो उससे शब्द (आवाज़) उत्पन्न हुआ । उससे (शब्द को सुनकर) राजा ने जाना कि कोई मृग (पशु) सरोवर में आ गया है । २५ । राजा ने तत्क्षण शब्दवेधी बाण चलाया, तो वह श्रवण को लग गया और वह (श्रवण) 'राम' कहकर पड़ गया । २६ । तब वह ब्राह्मण जिस स्थान पर पड़ा था, (उसी स्थान पर) राजा दशरथ (उसके) पास गये । उन्होंने दीन (व्याकुल) होकर श्रवण से कहा— 'मैंने (यह) अनुचित काम किया' । २७ । इस पर श्रवण ने कहा— 'जाकर मेरे माता-पिता को पानी पिलाओ । तुम उन वृद्धों का पालन करो' । ऐसा कहते हुए, उसके प्राण निकल गये । २८ । इससे राजा दशरथ कमण्डलु लेकर (उन) वृद्धों के पास आये और बिना (कुछ) बोले उन्हें जल दिया तो उनके मन उदास हो गये । २९ । (तब उन वृद्धों ने कहा)—'ओह ! श्रवण ! तुम क्यों नहीं बोलते हो ? तुम्हें किसी भी दिन (समय) क्रोध नहीं आया । हम जलपान नहीं करते (करेंगे) (क्योंकि) बिना बोले (एक दूसरे के) चित्त अलग हो जाते हैं अथवा मन टूट जाते हैं' । ३० । तब बाद में राजा बोले—'मैंने श्रवण को मार डाला । मैं अज (राजा) का पुत्र दशरथ हूँ और मेरा स्थान

में अजाणे कर्म आचर्युं, मृग वरांसे करी आज,
 हुं पुत्र थई पाळीश तमने, पीओ जळ महाराज । ३२ ।
 एवं सांभळी अति दुःखमां, आक्रंद मांडचुं अपार,
 अरे ! श्रवण जेवो पुत्र क्यांथी, प्रगटशे संसार ! । ३३ ।
 ज्यम लक्ष्मी नारायण तणी, सेवा करे अनुदिन,
 एम मातापितानी सेवा करी, ए पुत्रने छे धन्य ! । ३४ ।
 जेणे अमारी सेवा न करी, धरी मनुष्यादेह,
 चंडाळ तेने जाणवो, महापुत्र पापी तेह । ३५ ।
 तेनुं ज्ञान-ध्यान बळो सहु, जप तप क्रिया अनुष्ठान,
 चतुराई विद्या व्यर्थ तेनी, श्रवण, अध्ययन दान । ३६ ।
 वेदविद्या भण्यो मिथ्या, सकळ शास्त्र पुराण,
 तेने तीरथ पावन नव करे, थाय वृथा साधन जाण । ३७ ।
 मातपिताने उवेखी, शुभ करम करता अन्य,
 ते धरम अधरम जाणजो, सेवा समुं नहि पुण्य । ३८ ।
 एवं कही धरणी ढळ्या, मुर्च्छा थई तव आप,
 अंतकाळे रायने, बे जणे दीधो शाप । ३९ ।

अयोध्या है । ३१ । आज मैंने मृग (पशु) के भ्रम (धोखे) में आकर
 अनजाने में यह कर्म किया । मैं तुम्हारा पुत्र होकर (पुत्र के रूप में
 रहकर) तुम्हारा पालन करूँगा । महाराज, (अब) पानी पीओ । ३२ ।
 ऐसा सुनकर अत्यधिक दुःख में (के कारण) उन्होंने बहुत ही रुदन शुरू
 किया । उन्होंने कहा—‘ हाय ! श्रवण जैसा पुत्र संसार में कहाँ से प्रकट
 (उत्पन्न) होगा ? । ३३ । उसने रात दिन (अपने) माता-पिता की
 लक्ष्मी-नारायण की-सी सेवा की । धन्य है ऐसा पुत्र ! । ३४ । जिसने
 मनुष्य-देह धारण करके हमारी (जैसी अपने माता-पिता की) सेवा नहीं
 की, उसे चण्डाल समझो—उस पुत्र को महापापी समझो । ३५ । उसका
 सब ज्ञान, ध्यान जल जाए । उसका जप, तप, क्रियाकर्म, अनुष्ठान व्यर्थ
 है । उसकी चतुराई, विद्या, श्रवण, अध्ययन, दान—सब व्यर्थ है । ३६ ।
 उसके द्वारा वेदविद्या, सब शास्त्र, पुराण का सीखा-पढ़ा (हुआ) मिथ्या
 है । उसे तीर्थ (- क्षेत्र का भ्रमण) पावन नहीं करता है । यह समझो
 कि उसकी साधना व्यर्थ है । ३७ । माता-पिता की उपेक्षा कर जो अन्य
 शुभ कर्म करते हैं, उनके उस धर्मकर्म को अधर्म समझो । (माता-पिता

पुत्र-विजोगे प्राण तारा, जजो सत्य वचन,
 एवं कही वे मरण पाम्यां, राय कंप्या मन । ४० ।
 दाह क्रिया कीधी ते तणी, दशरथे तेणी वार,
 पछे अश्व आरूढ थई पोते, आव्या नग्नमोक्षार । ४१ ।
 उत्तर क्रिया करी वृद्धनी, आप्यां अपरिमित दान,
 राय हरख्या मन विषे, मारे थशे संतान । ४२ ।
 ए शापने वर मानियो, जे पुत्र थाशे सत्य,
 वसिष्ठ गुरुने वात कही, द्विज त्रैण पाम्यां मृत्यु । ४३ ।
 ए करमनी छे अकळगति, क्यां श्रवण-दशरथ योग?,
 लख्युं भविष्य मटे नहि, सुख-दुःख मृत्यु रोग । ४४ ।

वलण (तर्ज बदलकर)

रोग भोग ने सुख दुःख मृत्यु, ए लख्या प्रमाणे थाय रे,
 माटे कल्पना सरवे तजीने, भजो वैकुण्ठराय रे । ४५ ।

*

*

*

की) सेवा के समान अन्य कोई पवित्र कर्म नहीं है' । ३८ । ऐसा कह कर वे धरती पर लुढ़क गये । उन्हें मूर्च्छा (बेहोशी) आ गयी । अन्तकाल में उन दो जनों ने राजा को शाप दिया— । ३९ । '(हमारा) यह कथन सत्य है कि तुम्हारे प्राण पुत्रवियोग से जाएँ' । ऐसा कहकर वे मृत्यु को प्राप्त हो गये; तो राजा का मन काँप उठा । ४० । उस समय दशरथ ने उनकी दाह-क्रिया (सम्पन्न) की । बाद में घोड़े पर सवार होकर वे स्वयं अपने नगर में आ गये । ४१ । उन्होंने उन (वृद्धों) की उत्तर-क्रिया (सम्पन्न) करके अपरिमित दान दिया । (फिर भी) राजा मन में (इस विचार से) आनन्दित हो गये कि मेरे सन्तान (उत्पन्न) होगी । ४२ । यदि सचमुच पुत्र उत्पन्न हो जाए, तो इस शाप को वर समझो । फिर राजा ने गुरु वसिष्ठ से यह बात कही कि (उनके हाथों) तीन ब्राह्मण मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं । ४३ । कर्म की यह गति अगम्य है । कहाँ श्रवण और दशरथ का यह योग? सुख, दुःख, मृत्यु, रोग आदि सम्बन्धी जो भविष्य में लिखा है, वह नहीं मिटता (टलता) । ४४ ।

रोग, भोग और सुख-दुःख, मृत्यु—वह सब लिखे अनुसार होता है । इसलिए सब कल्पना त्याग कर वैकुण्ठराज भगवान् की भक्ति करो । ४५ ।

*

*

*

अध्याय-१० (दशरथ द्वारा कैकेयी को वर-प्रदान)

राग सामेरीनी चाल टूंकडी

(हवे) असुर तणो राजा वृषपरवा, प्राक्रमवंत अमोघ,
 तेणे शुक्राचारज पासे कराव्या, वृष्टिबंध प्रयोग । १ ।
 मेघतणुं आकर्षण कीधुं, आणी मनमां गर्व,
 अनावृष्टि थई बार वर्षनी, पीडा पाम्युं सर्व । २ ।
 गौब्राह्मणनी आदे प्रजा सह पाम्युं दुःख अपार,
 यज्ञयाग सह बंध थया, ने वरत्यो हाहाकार । ३ ।
 (त्यारे) इन्द्रे युद्ध घणा दिन कीधुं वृषपरवानी साथ,
 (पण) नव जितायो असुर महाबलियो, शुक्रतणो शिरहाथ । ४ ।
 ब्रह्माए कहचुं मघवापतिने, ए तुजथी नहि जिताय,
 (जो) दशरथरायने तेडी लावे तो दानव प्राजे थाय । ५ ।
 (त्यारे) अवधपुरीमां इन्द्रे आवी, जाच्या दशरथराय,
 अजनंदन त्यां तत्पर थईने, युद्ध करवाने जाय । ६ ।
 (त्यारे) केकै कहे मुजने साथे तेडो, मारे जोवुं छे युद्ध,
 जोउं तमारुं बळ छे केवुं, प्राक्रम विद्या विशुद्ध । ७ ।

अध्याय-१० (दशरथ द्वारा कैकेयी को वर-प्रदान)

अब (बात यह है कि) असुरों का राजा वृषपर्वा अद्भुत पराक्रमी था । उसने शुक्राचार्य द्वारा वृष्टिबंध नामक प्रयोग कराया । (ऐसा प्रयोग कि जिससे वर्षा नहीं होती, सूखा-अकाल पड़ जाता है) । १ । उन्होंने मन में गर्व करते हुए मेघों को आकृष्ट किया । इससे बारह वर्षों तक अनावृष्टि (वर्षा का अभाव) हो गयी । इससे सब पीड़ित हुए । २ । गार्ग्य, ब्राह्मण आदि सब प्रजा अपार दुःख को प्राप्त हुई । यज्ञ-याग सब बन्द हो गये और हाहाकार मच गया । ३ । तब इन्द्र ने वृषपर्वा के साथ बहुत दिन युद्ध किया । परन्तु वह महाबली असुर जीता नहीं गया; क्योंकि उसके मस्तक पर शुक्राचार्य का (वरद) हस्त था । ४ । (तदनन्तर) ब्रह्मा ने इन्द्र से कहा—वह (वृषपर्वा) तुमसे नहीं जीता जा सकता । यदि दशरथ को बुला लाओ, तो वह दानव पराजित हो जायगा । ५ । तब अयोध्या में आकर इन्द्र ने दशरथ राजा से याचना (विनती) की । तब अजनन्दन दशरथ तैयार होकर युद्ध करने के लिए चले । ६ । तब कैकेयी ने कहा कि मुझे साथ ले चलो, मुझे युद्ध देखना है, मैं देखूंगी कि तुम्हारा कैसा बल है, पराक्रम कैसा है,

केकैने लई रथमां बेठा, चाल्या त्यांथी नरेश,
 बृहस्पति आदि सकळ देवशुं, आव्यो साथ सुरेश । ८ ।
 सिधु पार जईने मांडचुं, जुद्ध करवा तेणी वार,
 वृषपरवानी साथे वढियो, दशरथराय अपार । ९ ।
 दारुण जुद्ध थयुं तेणी वेळा, मार्या असुर अनंत,
 सैन्य सहित वृषपरवानो, आण्यो राये अंत । १० ।
 (त्यारे) वृषपरवानो पक्ष करीने, शुक्राचारज आव्या,
 (कई) असुरनी सेना शेष हती ते, सरवे साथे लाव्या । ११ ।
 असुरगुरु त्यां मंत्र भणीने मूके बाण अपार,
 दशरथ राजा शर मूकीने, छेदे तेणी वार । १२ ।
 पछे शुक्रने भूपतिए अकळाव्या, सेन सकळ संहार्युं,
 (त्यारे) द्विजवरने अति क्रोध चढ्यो, जाणे रायने हमणां मारुं । १३ ।
 पछी पांच बाण महा प्रौढां मार्या, असुरगुरु निरधार,
 दशरथनो रथ पाछो हठाव्यो, बार धनुष तेणी वार । १४ ।
 धरी भांगी दशरथना रथनी, नमियो पृथ्वी मांहे,
 त्यारे केकैये निज कर घाली, रथ ऊभो राख्यो त्यांहे । १५ ।

(युद्ध-शास्त्र) विद्या कैसी शुद्ध है । ७ । राजा (दशरथ) कैकेयी को लेकर रथ में बैठे और वहाँ से चले । बृहस्पति आदि सब देवों की तरह इन्द्र भी उनके साथ आये । ८ । उस समय समुद्र के पार जाकर वे युद्ध करने लगे । दशरथ राजा ने वृषपर्वा के साथ घोर युद्ध किया । ९ । उस समय भीषण युद्ध हुआ और (उसमें) उन्होंने अनगिनत असुरों को मार डाला । राजा वृषपर्वा को सैन्य-सहित प्राणों के अन्त तक लाये (अर्थात् उन्हें मार डाला) । १० । तब वृषपर्वा का पक्ष लेकर शुक्राचार्य आये । कुछ असुरों की सेना, जो शेष थी, सब साथ में ले आये । ११ । तब असुरों के गुरु (शुक्राचार्य) ने मंत्र पढ़कर असंख्य बाण चलाये । दशरथ राजा ने बाण चलाकर उस समय उन्हें काट डाला । १२ । बाद में शुक्राचार्य को राजा ने व्याकुल कर दिया । तब ब्राह्मणश्रेष्ठ (शुक्राचार्य) को बहुत क्रोध आया । वे मानते हैं—मैं राजा को अभी मारता हूँ (मार डालूंगा) । १३ । तदनन्तर असुरों के गुरु ने वेग से पाँच बड़े बाण चलाये । और उस समय दशरथ के रथ को बारह धनुष दूर हटा दिया । १४ । दशरथ के रथ का धुरा टूट गया, (जिससे वह) रथ ज़मीन में धँस गया । तब कैकेयी ने अपना हाथ

एवुं बळ छे अबळानुं ते, नथी जाणता राय,
 तदाकार युद्धमांहे थया, कोणे सन्मुख नव रहेवाय । १६ ।
 दशरथ राजा कहे हवे ए ब्राह्मणने जो माहं,
 तो ब्रह्महत्यानुं पातक बेसे, मनमां एम विचार्युं । १७ ।
 पछी मुगट उडाड्यो शीश विषेथी, मूकी तीक्ष्ण बाण,
 त्यारे शुक्राचारज नाठा त्यांथी, युद्ध मूकी निरवाण । १८ ।
 जय-जयकार थयो तेणी वेळा, हरख्या देव अपार,
 जय पाम्या शत्रु संहारी, अवधपति निरधार । १९ ।
 एवे राये केकै सामुं जोयुं, विस्मे थया नरनाथ,
 रथचक्रमां धरी ठेकाणे दीठो राणीनो हाथ । २० ।
 प्रसन्न थई अजनंदन बोल्या, माग्य माग्य वरदान,
 तें मुजने रणमां जश आप्यो, राख्युं माहं मान । २१ ।
 (माटे) इच्छा होयते माग हुं आपुं, बे वर तुजने आज,
 राणी कहे हुं मागीश ज्यारे पडशे मारे काज । २२ ।
 वचन रायनुं लीधुं पोते, राणी हरखी मन,
 देवे जय-जयकार कर्यो, एम जय पाम्या राजन । २३ ।

डालकर उससे (उसके आधार पर) रथ को खड़ा रखवा । १५ । राजा यह नहीं जानते थे कि (इस) अबला (स्त्री) का ऐसा बल है । वे तो युद्ध में तल्लीन हुए । उनके सामने कोई खड़ा नहीं रह पाता । १६ । राजा दशरथ ने कहा—'यदि अब मैं इस ब्राह्मण को मार डालूँ, तो (मुझे) ब्रह्महत्या का पाप लगेगा' । उन्होंने मन में ऐसा विचार किया । १७ । और बाद में तीक्ष्ण बाण चलाकर उन्होंने (उनके) मस्तक पर से मुकुट को उड़ा दिया । तब शुक्राचार्य सचमुच युद्ध छोड़कर वहाँ से चले गये । १८ । उस समय जय-जयकार हो गया । देव बहुत हर्ष-विभोर हो गये । निश्चय ही अयोध्यापति दशरथ ने शत्रु का संहार कर जय प्राप्त की । १९ । राजा ने कैकेयी को सामने देखा तो वे विस्मित हो गये । उन्होंने रथ के पहिये में धुरे के स्थान पर रानी का हाथ देखा । २० । अजनन्दन दशरथ प्रसन्न होकर बोले—'वरदान माँगो, वरदान माँगो । तुमने मुझे रण में सफलता दिलायी और मेरे मान (प्रतिष्ठा) की रक्षा की । २१ । इसलिए जो इच्छा हो, सो माँग लो । मैं तुमको आज दो वर देता हूँ' । (इसपर) रानी ने कहा—'जब मुझे काम पड़े (आवश्यकता होगी) तो मैं माँगूंगी' । २२ । राजा का (से) अभिवचन लेकर रानी मन में आनन्दित हो गयी । देवों ने जय-जयकार

इंद्रे आभूषण बहु आप्यां, वस्त्र अनोपम सार,
आशिष दीधी वाचस्पतिए, दशरथने तेणी वार । २४ ।

इंद्रे पूछ्युं राय तमारे, शां छे घेर संतान ?

(त्यारे) दशरथरायने दुमो चाल्यो, दीन थया दुःखवान । २५ ।

(त्यारे) बृहस्पति कहे चिता नव करशो, भूप छो भाग्यवान,
तमारा पुत्र थई अवतरशे, पोते श्रीभगवान । २६ ।

विभांडिक ऋषिनो पुत्र छे शृंगी, मृगीथकी उत्पन्न,
पुत्रेष्टि जग्न करावो ते पासे, छे ब्रह्मनिष्ठ मुनिजन । २७ ।

तेनी स्त्री-पुरुषनुं भान नथी पण, गान थकी वश थाय,
(बाकी) अन्य उपाये ते न आवे, सांभळो साचुं राय । २८ ।

(त्यारे) दशरथ कहे तमो अपसरा मोकली, मुनिवर मोह पमाडो,
ज्यम त्यम करने लावो तेने, अयोध्यामां पहुँचाडो । २९ ।

एवुं कही राये आज्ञा मागी, इंद्र तणी तेणी वार,
कैके साथे रथमां बेसी, आव्या नगर मोझार । ३० ।

वृषपरवाने मायों त्यारे, मुक्त थयो परजन्य,
वृष्टि थई सहु सृष्टिमांहे, टळिया दुःखना दिन । ३१ ।

किया । इस प्रकार राजा दशरथ विजयी हुए । २३ । इन्द्र ने (राजा दशरथ को, बहुत आभूषण और अनुपम सुन्दर वस्त्र दिये । उस समय बृहस्पति ने दशरथ को आशीर्वाद दिया । २४ । फिर इन्द्र ने पूछा— 'राजन्, तुम्हारे घर में क्या सन्तान है ?' तब दशरथ राजा को बेचैनी अनुभव हो गयी । वे व्याकुल और दुखी हो गये । २५ । तब बृहस्पति ने कहा— 'राजन्, चिन्ता न करो । तुम भाग्यवान हो । स्वयं श्रीभगवान् तुम्हारे पुत्र होकर अवतरित होंगे । २६ । विभाण्डिक ऋषि का मृगी (हिरनी) से उत्पन्न शृंगी नामक पुत्र है । उसके द्वारा पुत्रेष्टि (नामक) यज्ञ कराओ; वह ब्रह्मनिष्ठ मुनि है । २७ । उसे स्त्री-पुरुष (के अन्तर) का भान नहीं है; परन्तु वह गान से वश होगा । हे राजन्, यह सत्य सुनो कि किसी अन्य उपाय से वह नहीं आएगा । २८ । तब दशरथ ने कहा— 'तुम अप्सरा को भेजो और (उस) मुनि को मोहित करो । ज्यों-त्यों करके उसे लाओ और अयोध्या में पहुँचा दो । २९ । ऐसा कहकर राजा ने इन्द्र से आज्ञा माँगी और कैकेयी के साथ रथ में बैठकर वे नगर (अयोध्या) में आ गये । ३० । उन्होंने वृषपर्वा को मार डाला; पर्जन्य (वर्षा का देवता) मुक्त हो गया । समूची सृष्टि में वर्षा हो गयी, (और)

अपसराने पछे आज्ञा आपी, इंद्रे मोकली तेह,
रंभा नामे चतुरा चाली, चतुर-शिरोमणि जेह । ३२ ।

वलण (तर्ज बदलकर)

चतुर-शिरोमणि नायका, वेगे तत्पर थाओ रे,
शृंगी ऋषिने मोह पमाडी, अयोध्यामां लेई जाओ रे । ३३ ।

दुःख के दिन टल गये । ३१ । अनन्तर अप्सरा को आज्ञा देकर इन्द्र ने उसे भेज दिया । तब चतुरों में शिरोमणी चतुर रम्भा नामक अप्सरा (वहाँ से) चली । ३२ ।

चतुर शिरोमणि नायिका (रम्भा) शीघ्र तैयार हो गयी । शृंगी ऋषि को मोहित करके वह उन्हें अयोध्या में ले गयी । ३३ ।

*

*

*

अध्याय-११ (शृंगी ऋषि का अयोध्या में आगमन)

राग मारु

आपी आज्ञा निर्जर भूप, चाली अप्सरा अद्भुत रूप,
महावनमां तत्क्षण आवी, साथे ऋतु वसंतने लावी । १ ।
वन शोभा तणो नहि पार, फूली वनस्पति भार अढार,
जाई जूई केतकी महेके, त्यां गुलाब ने चंपक बहेके । २ ।
फूल्यां ब्रह्मद्रुम ने रसाळ, रंभा अशोक ताल तमाल,
बोले हंस, कारंडव मोर, कोकिला शुक मेना चकोर । ३ ।

अध्याय-११ (शृंगी ऋषि का अयोध्या में आगमन)

देवों के राजा (इन्द्र) ने आज्ञा दी और अद्भुत रूपवाली (रम्भा नामक) अप्सरा (वहाँ से) चली । वह तत्क्षण महावन में आ गयी । वह साथ में वसन्त ऋतु को (भी) लायी । १ । उस वन की शोभा का कोई पार नहीं था । वनस्पतियाँ ढेर की ढेर फूली थीं । जाही, जूही, केतकी, (केवड़ा) महक रही हैं । वहाँ गुलाब और चम्पा महक रहे हैं । २ । ब्रह्मवृक्ष, आम्रवृक्ष (आम), रम्भा (केला), अशोक, ताल, तमाल फूले थे । (वहाँ) हंस, कारण्डव (बतख), मोर, कोकिल, शुक (तोता), मैना, चकोर पक्षी बोल (गा) रहे हैं । ३ ।

वाडन्न गुलगिरुत्वडवड वडकु । वेडिमि सूपग वैरुचु भास्करुडु
वीकतो ननलुडु वैलग शंकिचु । देकुव सैडिगालि दिरुगंग वैरुचु ४६०
नन्निशाचरु गन्न नाटोपमेसग । मुत्तीरु कडलेत्ति ओयंग वैरुचु
नेपुन गन्नप्पुडेल्ल मम्मेचु । बापात्मुडुगुनट्टि पंक्तिकंधरुनि
नंतंबु नौन्दिचु ना युपायंबु । जिंतिपवलयु नी चित्तंबुलोन्
ननवुडु ना तैरंगंतरंगमुन । गनि ब्रह्म मुनिदेवगणमुनीक्षिचि
'यमरुलचे जावडसुरुलचेत । समयडु गंधर्व समितिचे जेडडु
रजनीचरुलचेत ग्रागडैन्नडुनु । भुजगसंघमुलचे बौलियडैन्नडुनु
यक्षुलचे नीलगडालंबुलोन् । वक्षियूधंबुचे बडडु वानिकिनि
वरमिच्चुनपुडु वाक्कुवडय्ये । नरुल गावुन वाडु नरुलचे जच्चु
विशदंबुगा निक विनुडु हिरण्य । कशिपुडु लोकमुल् गारिंचु नाडु
नरसिंह रूपंबु नारायणुडु । धरियिचि वानि निदारिचिनाडु ४७०

(आपके द्वारा प्रदत्त) दारुण वर-शक्ति के कारण, हे कमलासन ! वह दुर्निवार बना हुआ है । (वह) देवताओं के साथ इन्द्र को पकड़कर, उन्हें अपमानित करते हुए, बाहुदर्प (बाहुबल के गर्व) के कारण सताता है । गन्धर्व, यक्ष आदि (देव) गणों (और) मुनियों को बन्धनों में डाल देता है, साधुओं को पकड़कर कष्ट देता है । उसके नाम से समस्त पर्वत थर-थर काँपते हैं । ताप दिखाने में सूर्य डरता है । दर्प (औद्धत्य) के साथ जलने में अनल आगे-पीछे देखता है (शंकाकुल रहता है) । पूरी शक्ति के साथ चलने में पवन डरता है ॥ ४६० ॥

—उस निशाचर को देख सम्भ्रमयुक्त हो, समुद्र पूरी तरह से गर्जन करने के लिए भी डरता है । जब कभी (हमें) देखता है, उद्धत हो हमें सताता है । ऐसे पापात्मा पंक्तिकंधर (रावण) का अन्त करने के (उपयुक्त) उपाय (को) आपको मन में सोचना चाहिए ।' ऐसा कहने पर उस विधान को (रावण के अत्याचारों को) अन्तरंग में देखकर (हृदयंगम कर) ब्रह्मा ने मुनि और देवगण को देखकर (कहा) '(रावण) अमरों के हाथ नहीं मरेगा, राक्षसों के हाथ नहीं मरेगा । गन्धर्वों की समिति (समूह) से नहीं मिटेगा । कभी (किसी दिन) रजनीचरों के हाथ समाप्त नहीं होगा । किसी भी-दिन भुजंगों (सर्पों) के समूह से नहीं मरेगा । युद्ध में यक्षों के हाथ नहीं मरेगा । पक्षिसमूह से नहीं गिरेगा (पराजित नहीं होगा) । (मेरे) वर देते समय उसने नर का नाम नहीं लिया इसलिए वह नरों से ही मरेगा । अब विशद रूप से सुनो । हिरण्यकशिपु के लोकों को सताते समय नारायण ने नरसिंह का रूप धारण कर, उसे चीर डाला था ॥४७०॥

वाडे वीडै विश्रवसुनकु बुट्टि । नाडु गावुन नेडु नारायणुंडु
 वीनि निर्जिचु नव्विष्णुनि नभय । दानबिक दगवेडवल्यु
 ननि देवतलतोड ना ब्रह्म वलुक । ननुवौन्द नन्दरु नप्पुडे कदलि
 यमृताब्धिकडकेगि यच्युतुनि गांचि । विमलचित्तुलुनयि विनयमेपार
 गरमुलु मुकुळिचि कडु भक्ति श्रीविकि । यरुदुग मुरलप्पुडाविष्णु गूचि ४७५

देवतलु विष्णुवुनु नुतिचुट

विनयसंभ्रममुलु वेलयनिट्लनिरि । 'कनकाक्षशिक्ष ! लोकत्रयाध्यक्ष !
 वनजालयवक्ष ! वसुमतीरक्ष ! वनजाक्ष ! माकु नेव्वरु लेरु दिक्कु
 नीवौक्कडवुदक्क निक्कमीमाट । गोविंद ! परिपूर्णगुण ! चिदानंद !
 देव ! जगन्मय ! देवादिदेव ! । देवनिस्तारक ! दिव्यावतार !
 शुभमूर्ति ! शरणंबु सौच्चिन माकु । नभयमिच्चितिगादे यमृताब्धि
 दौल्लि ४८०

तलपोय दानवदळन ! नी बाहु । बलविक्रमंबुल बरुगु लोकमुलु
 भक्तवत्सल ! निन्नु बरिक्किप दरमे । भक्तियोगमुदक्क बयलु माटलनु

—वही (हिरण्यकशिपु) यह (रावण) बनकर विश्रवसु के यहाँ पैदा हुआ है । इसलिए आज नारायण ही इसको निर्जित (पराजित) करेंगे । उस विष्णु के अभयदान को अब हमें अच्छी तरह से माँगना चाहिए ।' ऐसा उस ब्रह्मा के देवताओं से कहने पर, उचितरूप से सभी (देवता) तभी निकलपड़े (और) अमृताब्धि (क्षीरसागर) के पास जाकर, अच्युत को देख, विमल चित्त से, अति विनयपूर्वक हाथ जोड़कर, अतिभक्ति से प्रणाम कर वे देवता विष्णु के प्रति—॥ ४७५ ॥

देवताओं का विष्णु की स्तुति करना

—विनय और संभ्रम को प्रकट करते हुए बोले—'हे हिरण्याक्ष को दंडित करनेवाले ! त्रिलोकीनाथ ! वक्षस्थल में लक्ष्मी को धारण करने वाले ! वसुमती (पृथ्वी) के रक्षक ! वनजाक्ष (कमलनयन) ! आपके अतिरिक्त हमारा कोई शरण (सहायक) नहीं है । यह बात सत्य है । हे गोविन्द ! हे परिपूर्णगुण ! चिदानन्द ! देव ! जगन्मय ! देवाधिदेव ! देवों के रक्षक ! दिव्यावतार ! शुभमूर्ति ! पूर्वकाल में क्षीरसागर में आपकी शरण में आए हुए हमको (आपने) अभयदान दिया था ॥ ४८० ॥

—हे दानवदलन (राक्षसों का नाश करने वाले) ! आपके बाहुबल (और) विक्रम से (ही) (ये) लोक अवस्थित हैं । हे भक्तवत्सल !

मधुसूदनडु! निन्नु मदिलोन नम्मु । नधिक पुण्युलकैन्दु नापदलगलवे
जगदुद्भवस्थितिसंहारकृतुलु । दगविनोदंबुलै तनरु नी माय
नाधारभूतमै यखिललोकमुल । माधव ! ताल्चु नी महनीय तनुवु
अहिराजतल्प ! नीयलरु वैभवमु । महिमसूडग नवाड्मानसगोचरमु
शरणागतत्ताण ! सर्वलोकेश ! । शरणार्थुलगु मम्मु जनुगाव नीकु
गावुन द्रैलोक्य कंटकुडैन । रावणु बौलियिचि रक्षिपु मम्मु
माकौक कार्यबु मसलक चेसि । लोककीर्तुल बौन्दु लोकैकविनुत !
निर्मलचित्तुडु निश्चलव्रतुडु । धर्यशीलुंडु नुत्तमगुणान्वितुडु ४९०
नगुचुन्न दशरथुडश्वमेधंबु । दगजेसि मरि शुचित्वमुन नुत्ताडु
काकुत्स्थवंशुनि कांतल दलप । नेकांतलनु वारिकेनसेयरादु
नरमूर्तुलौपंग नालुगंशमुल । सरिसजोदर ! नीवु जनिर्यिपवल्यु
वरशक्तिसुरल कवध्युडै लोक । परितापकरुडैन पत्तिकंधरुनि
मुनुल, गंधर्व किंपुरुषुल, सुरल । बनिवडि नौञ्चिन पापात्मु जंपि

भक्तियोग के अतिरिक्त अन्य बातों (उपायों) से आपको देख (पहचान)
सकना क्या सम्भव है ? (नहीं है ।) हे मधुसूदन ! आप पर मन में विश्वास
करने वाले महान् पुण्यात्माओं को कहीं विपत्तियाँ होती हैं ? (नहीं) ।
आपकी माया के कारण जगत् की सृष्टि, स्थिति, संहार के कार्य (आपके
लिए) लीला मात्र ही तो हैं । हे माधव ! आपका महनीय तन
अखिललोकों को आधारभूत हो कर धारण करता है । हे शेषशायी !
आपके विलसित वैभव (और) महिमा, ध्यान देने पर, आवाङ्मानसगोचर
(वाक् और मन से अतीत) हैं । हे शरणागतत्ताण ! (शरणागतों की
रक्षा करने वाले) ! सर्वलोकेश ! हम शरणार्थियों की रक्षा आपको करनी
चाहिए । अतः त्रिलोक-कंटक बने रावण का वध करके हमारी रक्षा
कीजिए । हे लोकैकविनुत (स्तुत्य) ! हमारा एक कार्य अविलम्ब
करके लोक (में) कीर्ति पाइए । निर्मलचित्त, निश्चलव्रती, धर्मात्मा,
उत्तमगुणसमन्वित—॥ ४९० ॥

—दशरथ अश्वमेध यज्ञ पूरा करके परमशुचि (पवित्रता को प्राप्त) हुआ है ।
(उस) काकुत्स्थ-वंशी (दशरथ) की स्त्रियों का विचार करें तो कोई भी
स्त्री उनकी बराबरी नहीं कर सकती । हे सरिसजोदर ! (कमलगर्भ)
आपको चार अंशों में नरमूर्तियों (श्रेष्ठ नर) के रूप में जन्म लेना चाहिए ।
वर (की) शक्ति से जो देवताओं के लिए अवध्य है, जो लोक-परिताप-कर
(लोक को दुख देनेवाला) है, जिस पापात्मा ने मुनियों, गन्धर्व, किंपुरुष,
देवताओं को रुचिपूर्वक सताया है, उस पत्तिकंधर (रावण) का वध करके,

सवनमुल् सेयिपु संयमिवरुल । भुवनमुल् रक्षिपु पुंडरीकाक्ष !'
 यनि विन्नपमुसेयु नमरुल जूचि । वनदगर्जितगति वनजाक्षुडनिय
 'सुरलार! मीरिक् सुखमुन नुंडु । डरिगि मर्त्यमुन ने नवतारमंदि
 यादट बंधुमित्रामात्यपौत्र । सोदरयुतु दशास्युनि गीटडंचि
 निंडार नेलैद नियतितो वदुनौ । कंडु वेलैडुलु गुंभिनीतलमु५००
 नजुनि वरंबुन नवनीतलमुन । रजनीचरेन्द्रु राजिल्ल गलिगे
 ननुचु वरंबिच्चि यजुनि वीड्कोलिपि । यनिमिषुलनु बंपि यसुरारि
 सनिये ५०२

दशरथुनकु यज्ञपुरुषुडु दिव्यपायसमौसगुट

नप्पुडु विमल होमाग्नि लो नुंडि । योप्पेडु पुण्यात्मु डौक दिव्यमूर्ति
 हरिनील नीलांगुडरुणांबरुंडु । तरुणाकर्तेजु उदग्रविक्रमुडु
 परग बायसमुतो वसिडिपात्रंबु । गरमुन धरियिचि ग्रक्कुन वैडलि
 तनु जूचि यद्भुतादरमुन लेचि । विनयाद्दुडै युन्न विभुनि वीक्षिचि

संयमिवरों (मुनियों) से सवन (यज्ञ) करवाइए; और हे पुंडरीकाक्ष (कमलनयन)! भुवनों (लोकों) की रक्षा कीजिए ।' ऐसा कहकर विनती करने वाले अमरों को देखकर, घन-गरज के समान (गम्भीर स्वर में) वनजाक्ष (कमलनयन) ने कहा—'हे देवताओं! तुम लोग जाकर अब से सुखी रहो । मर्त्य (लोक) में मैं अवतार लूंगा और तब बन्धु, मित्र, अमात्य (मंत्री), पौत्र, सोदर (सहोदर-) युत हो दशास्यु (दशानन) का नाश करके, कुंभिनी (पृथ्वी-) तल पर ग्यारह हजार वर्ष तक, नियमपूर्वक परिपूर्ण रूप से, शासन करूंगा । ॥ ५०० ॥

—अज (ब्रह्मा) के वर से (ही) अवनीतल (पृथ्वी) पर रजनीचरेन्द्र (यह राक्षसराज) विराजमान हो सका है ।' यों कहते हुए वर प्रदानकर अज को विदाकर, अनिमिषों (देवताओं) को भेजकर असुरारि (दैत्यों के शत्रु, विष्णु) चले गए । ॥ ५०२ ॥

दशरथ को यज्ञपुरुष का दिव्य पायस देना

तब विमल होम की अग्नि से शोभायमान, पुण्यात्मा-स्वरूप एक दिव्य मूर्ति जो हरिनील नीले (श्यामल) अंगवाला, अरुण अंबर (लाल रंग के वस्त्र) वाला, तरुणसूर्य के समान तेज वाला, उदग्र विक्रमी था, शोभा से पायस (खीर) से (भरे) स्वर्ण-पात्र को हाथ में धारण कर, अकस्मात् बाहर आया । उस (दिव्यमूर्ति) को देख, राजा (दशरथ) अद्भुत

‘भूनाथ! विनु यज्ञपुरुषुंड सुतुल । ने नीकु नीगोरि येतेञ्चिनाड
नादट नी पायसान्नंबु पंचि । नी देवुलकु बेट्टुनिष्ठतो’ ननिन
ननुरागमुनु बौन्दि यवनीशुडतनि । ननयंबु बृजिचि या पायसंबु
दा नंदुकोनिये सुधाकलशंबु । जेनंदुकोन्न शचीपति माडिक् ५१०
नंत ब्राजापत्युडटु मायमैन । नंतःपुरंबुनकरिगि भूविभुडु
रमणुलेदुर्कोनि प्रमदाब्धि देल । नमर निर्मितमैन या पायसंबु
सगमु गौसत्यकु सगमुलो बुच्चि । सगमु सुमित्रकासगमुलो सगमु
गैककु निच्चि युत्कंठ नासगमु । ब्राकटबुंग सुमित्रकु निच्चै मरियु
नप्पायसान्नंबु लथि भुजियिचि । यप्पुडु गर्भिणुलैरि वारेलमि
दगिलि वारल जूचि दशरथेश्वरुडु । मिगुल नानंदिचि मैरसे जूपरकु
मौगि ऋष्यशृंगादि मुनुल भूपतुल।दगुनर्चनमु लिच्चि तग वीडुकोलिपि
परमानुरागुडै पडतुलु दानु । धरणीशुडपुडयोध्यकु नेगुदेञ्चै
दम यागभागमुल् दगिलि कैकोन्न । यमरुलु दमलोकमरिगेडु चोट ५११

(आश्चर्य और) आदर भाव से उठ खड़े हुए, विनय से सम्पन्न राजा को देख वे बोले—‘हे भूनाथ ! सुनो, मैं यज्ञपुरुष हूँ । तुम्हें पुत्रप्रदान करने की इच्छा से आया हूँ । प्रीति के साथ यह पायसान्न (क्षीरान्न) अपनी देवियों में बाँट दो ।’ ऐसा कहने पर राजा ने अनुराग पाकर (सन्तुष्ट होकर) उन (दिव्य पुरुष) की अतिशय पूजा की (और) उस पायस को यों ग्रहण किया जैसे शचीपति (इन्द्र) ने सुधाकलश को ग्रहण किया था । ॥ ५१० ॥

—तब प्राजापत्य (अग्निदेव) के अन्तर्द्धान हो जाने पर राजा अन्तःपुर में गए; रमणियों (रानियों) ने (उनका) स्वागत किया और (सभी) आनन्द में मग्न हो गए । (तब राजा ने) अमर-निर्मित उस पायस का आधा भाग कौसल्या को, (और) शेष आधे में आधा भाग सुमित्रा को दिया, बचे हुए भाग का आधा कैकयी को और आधा सुमित्रा को, फिर उत्कंठा के साथ, दिया । फिर उस पायसान्न को इच्छा से खाने (ग्रहण करने) के बाद, वे (रानियाँ) संतृप्त हो, गर्भवती हुईं । अनुरक्ति के साथ उन्हें देखकर दशरथेश्वर (राजा दशरथ) बहुत प्रसन्न हुए और देखने वालों को शोभायमान दिखाई पड़े । निदान (राजा ने) ऋष्यशृंगादि मुनियों (और) भूपतियों को उचित रूप से अर्चन (सम्मान) कर, समुचित रूप से विदा कर दिया । तब परमानुरक्त हो राजा स्वयं और (अपनी) स्त्रियों के साथ अयोध्या में आए । अपने अपने यज्ञ-भाग को प्रेम से लेकर अमरों के अपने लोक में जाते समय—॥ ५११ ॥

ब्रह्म देवतलनु वानरुलुगा बुट्टुडनुट

नाकंजगर्भु डिद्रादुल जूचि । 'लोकरक्षणकळालोलुडै शौरि ५२०
 धारुणि पै नवतारंबु सेय । मीरुनु दोड्पाटु मेकौनवल्यु
 नटुगान लोकहितार्थवर्तनुल । बटुपराक्रम रूप बल पयोनिधुल
 बलगर्वमुल मिम्मु ब्रतिवोल्प जालु । बलियुर वानरपतुल बैक्कंड्र
 गिन्नर गंधर्व खेचर यक्ष । पन्नगामर सिद्ध भामिनुलंदु
 बुट्टिपुडे मुन्नु पुट्टिचिनाड । नैट्टन बलपयोनिधि जांबवंतु
 नदियेट्टिदनिन ने नावुलिचुट्यु । नुदयिचै जिरतरायुष्मंतुंडतडु
 ननि ब्रह्म दमतोड नानतिच्चुट्यु । विनि संतसिल्लि या वेल्पुलंदरुनु
 अनिमिषपति वालि, ननलुंडु नीलु । निनुडु सुग्रीवु, सुरेज्युंडु दारु,
 सिंधुवल्लभुडु सुषेणु गुह्यकुडु । गंधमादनु विश्वकर्मयु नलुनि
 दिविजवैद्ययुगंबु द्विविदमैदुलनु । दिविरि पर्जन्याधिदेवत शरभु ५३०
 गरुवलि हनुमंतु गडगि पुट्टिप । धरणि बुट्टिचिरि दक्किन सुरलु
 दमतम यंशमुल् दगबुच्चि पेचि । यमितशौर्युल वानराधीशवरुल

देवताओं को वानरों के रूप में जन्म लेने के लिए ब्रह्मा का कहना

—वह कंजगर्भ (ब्रह्मा) इंद्र आदि (देवताओं) को देखकर यों बोले:—
 'लोकरक्षण-कला में आसक्त होकर शौरी (विष्णु) के ॥ ५२० ॥

—धारुणी (धरती) पर अवतार लेते समय, आपको भी (उनकी) सहायता
 के लिए तैयार हो जाना चाहिए । ऐसा हो, (इसलिए) तुम लोकहितार्थ
 वर्तन वाले, अत्यधिक पराक्रम, रूप, बल के पयोनिधि (समुद्र) के सम,
 बलगर्व (अत्यधिक बल) में अपने समान बलवान् कई वानरों को किन्नर,
 गन्धर्व, खेचर, यक्ष, पन्नग, अमर (तथा) सिद्ध स्त्रियों (के गर्भ) से
 उत्पन्न करो । मैं पहले ही बल-सिन्धु जाम्बवान् को जन्म दे चुका हूँ ।
 वह कैसे ? मेरे जम्भाई लेने से उस चिरतर आयुष्मान ने जन्म लिया
 है ।' इस तरह ब्रह्मा के अपने को आदेश देने पर, (उस आदेश को)
 सुनकर, वे सब देवता प्रसन्न हुए । (तब) इंद्र ने वालि को, अग्नि
 ने नील को, सूर्य ने सुग्रीव को, बृहस्पति ने तारु को, वरुण ने सुषेण
 को, कुवेर ने गंधमादन को, विश्वकर्मा ने नल को, अश्वनीकुमारों ने
 द्विविद और मयंद को, पर्जन्य ने शरभ को, ॥ ५३० ॥

—(और) वायु ने हनुमान् को उपक्रम कर जन्म दिया । (तब) अन्य
 देवताओं ने अपने अपने अंश (तेज) देकर, अमित शौर्य से युक्त श्रेष्ठ
 वानराधीशों को उत्पन्न किया । वे (सभी) वानर जगत् के आप्त-वर्तन

नावानरुल् जगदाप्त वर्तनुलु । दावाग्नि - तुल्युलुदग्र - विक्रमुलु
 पर्वताकारुलै भासिल्लुवारु । सर्वलोकमुलंदु सरिलेनिवारु
 भीमसाहसिकुलै पैम्पारुवारु । गामरूपुबुल गरमीप्पुवारु
 दरिमि यब्धुलैन दाटेडुवारु । मेरुमि कौण्डलनैन मीटेडुवारु
 नखदंष्ट्रहेतुलै नलिग्रालुवारु । नखिल लोकोत्तरुलै यौप्पुवारु
 धारुणिनैन निदारिचुवारु । नै रूढिकैक्कि युदात्तुलै मिचि
 कौन्दरु सुग्रीवु गौन्दरु वालि । गौन्दरु हनुमंतु गौन्दरु नीलु
 गौन्दरु नलमैदकुमुदुल गौलिचि । येन्दु नभेद्युलै येषु दीपिप५४०
 मलयदर्दुर गंधमादन विन्ध्य । मुलु मौदलगु शैलमुल, गाननमुल
 बहुजल नदनदीप्रांत देशमुल । विहरिचुचुंडिर वेङ्कतोन्त५४२
 महनीय पायस महिमचे जेसि । यहिमांशुकुलु पत्तुलंदु गर्भबु
 ललवड नाधानमैनदि मौदलु । कलिमि गैकीने वेदकौनुलेन्तयुनु
 नमृतान्नरुचि लोन नडगक वैलिकि । गमकिचेनन देहकळ वैल्लवारु,
 रावणसाम्राज्य रम मुक्कु नल्पु । गाविचुटकु सूचकमुलिवियनग

(शुभकारी), दावाग्नि तुल्य, उदग्र विक्रमी, आकार में पर्वत के समान, सर्वलोकों में असमान, भयंकर साहस से युक्त, शोभायमान, कामरूपी, आज्ञा पाकर समुद्रों को भी पार कर जाने वाले, (अपनी) शक्ति से पहाड़ों को भी उखाड़ फेंकने वाले, नख और दांत रूपी हथियारों से अतिशय शक्ति वाले, अखिल लोकोत्तर (अलौकिक) शक्तिशाली, पृथ्वी तक को चीर-फाड़ डालने वाले, उदात्त (वे वानर) प्रसिद्ध हुए । (उनमें) कुछ लोग सुग्रीव की, कुछ वालि की, कुछ हनुमान् की, कुछ नील की, कुछ नल, मयंद, कुमुद की सेवा करते रहे । वे (वानर) सर्वत्र अभेद्य हो, (अपनी) श्रेष्ठता से प्रकाशित होते हुए, ॥ ५४० ॥

—मलय, दर्दुर, गन्धमादन, विन्ध्य आदि पर्वतों (और) काननों तथा बहुजल से युक्त नद-नदी प्रान्तों में, बड़े आनन्द के साथ विहार करते रहे थे । ॥ ५४२ ॥

—तब उस महनीय पायस की महिमा से उस हिमांशुकुल (चन्द्रवंशी?) राजा की पत्नियों ने गर्भ धारण किया । तब से (गर्भधारण के बाद) लेकर उनकी (रानियों की) क्षीण कटियाँ पुष्ट होने लगीं । देह की कान्ति श्वेत पड़ने लगी मानों अमृतान्न (दिव्य पायस) की कान्ति भीतर ही भीतर न समा सकी, बाहर भी व्याप्त हुई । रावण की साम्राज्य-लक्ष्मी की नाक को कालिख लगाने की सूचनाएँ ये हैं, ऐसा कहने के लिए और समस्त

ननपत्यतादोषमंतयु वैडल । मौनसैनादगे जनु मुक्कुल नल्पु
चेक्कुलु पलुकेक्के जिट्टुमुलु बलिसो । निक्के नाभुलु वळुल् नेरुलकुवासे
दलचूप्पे गोकुलंतट ग्रमंबुननु । नेल्लु दौम्मिदियु निडिनपिदप ५४९

श्री रामावतारमु

वर्णित मधुमासवरशुक्लपक्ष । पूर्णयौ नवमिनि बुधवासरमुन ५५०
महि बुनर्वसुतार मध्याह्नवेळ । ग्रहपंचकमु नुदग्रस्थिति दनर
दौलगक गुरुडु जंद्रुडु गूडियुंड । ललितकर्काटकलग्नंबुनंदु
सर्वलोकाधार जगदेकवीर । शर्वादि देवता संस्तुयमानु
दिव्यलक्षणकळा देदीप्यमानु । नव्ययु नसमानु नार्तातिहरणु
भव्यु जिदानंदु वरमकल्याणु । दिव्युल रक्षिचु दीनार्तिहरणु
गुणगणालंकार गुरुकीर्तिहार । फणिराजशयनु श्रीपति हृषीकेशु
ना कमलोदर नर्द्धाशमुन । काकुत्सकुलु रामु गनियै गौसल्य
यदिति यिद्रुनिगन्न यनुबुन दूर्पु । सुदति चंद्रुनि गन्न चोप्पुन नंत
भूलोकविनुतमौ पुण्यनक्षत्र । लालितंबगु मीन लग्नंबुनंदु
गमलाप्तसमतेजु गमलाप्तवंशु । गमलाक्षि भरतुनि गनियै गैकेयि ५५०

अनपत्यता-(सन्तान-हीनता का) दोष मानों शरीर से निकल रहा हो, उनके कुचाग्र काले होने लगे । कपोल पतले पड़ गए । थक ज्यादा आने लगी । नाभियाँ उभरने लगीं । त्रिवलियों की रेखाओं की कुटिलता दूर हो गई । (अनेक वस्तुओं को पाने की) इच्छाएँ उत्पन्न हुईं । इस प्रकार धीरे-धीरे नौ महीनों के समाप्त होने पर, ॥ ५४९ ॥

श्रीराम का अवतार (जन्म)

—प्रशंसनीय मधुमास (चैत्रमास) के श्रेष्ठ शुक्लपक्ष में, पूर्ण नवमी तिथि, बुधवार को, ॥ ५५० ॥

—पुनर्वसु नक्षत्र में, मध्याह्न के समय, ग्रह-पंचकों के उच्चस्थिति में शोभायमान रहते समय, गुरु और चन्द्र के अचंचल योग के रहते हुए, ललित कर्क लग्न में, सर्वलोकाधार, जगदेकवीर, शर्व (इन्द्र) आदि देवताओं से स्तुत्य, दिव्य लक्षणों से देदीप्यमान, अव्यय, असमान, आर्तजनों की आर्ति को हरने वाले, भव्य, चिदानन्द, परमकल्याण (प्रद), देवताओं के रक्षक, दीनार्तिहरण, गुणसमूह से अलंकृत, महान् कीर्ति से युक्त, शेषशायी, श्री (लक्ष्मी के) पति, हृषीकेश, उस कमलगर्भ (विष्णु) के अर्द्धांश के रूप में, काकुत्स्थवंशी श्रीराम को कौसल्या ने जन्म दिया ।

सामीजी कहते हैं कि जल के बुदबुदे तथा वृक्ष की छाया की तरह काया एवं माया का प्रपंच झूठा है, क्योंकि जो भी इस संसार में आये हैं वे सदा नहीं रह पाये हैं (बुदबुदे तथा वृक्ष की परछाई की तरह सभी मनुष्य तथा वस्तुएँ अस्थिर और नाशवान हैं ।) ॥ ११८ ॥

रचे मनु खललु, फाहीअ फाथो पाणही ।

सामी समुझे कीनकी, मूर्खु माया छलु ।

सान्ति न पाए मृघ जाँ, दिसी मृघी जलु ।

तडीं थिए अचलु, जडीं पर्ची दिसे पाणखे ॥ ११९ ॥

सामीजी कहते हैं कि मन ने भ्रम रचकर उसकी फाँसी में अपने आप को फँसा रखा है, वह मूर्ख मन, माया के छल-बल को नहीं समझता है । वह मृग की तरह मृगतृष्णा में शान्ति नहीं पाता । (जिस प्रकार मृग मरुभूमि में सूर्य की किरणों में चमकती हुई रेत को पानी समझकर उसके पीछे बेचैन हो दौड़ता रहता है, पर कभी शान्ति नहीं पाता, उसी प्रकार मनुष्य भी माया के चमकते हुए रूप के पीछे भटकता रहता है पर उसे कभी शान्ति नहीं मिलती) । पर जब मनुष्य अपने भीतर झाँककर देखता है, तभी वह स्थिरता (शान्ति) प्राप्त कर पाता है ॥ ११९ ॥

रन विधो रोलो, जुदाईअ जो जग में ।

सामी कयाँई सभ खे, पिनाए पोलो ।

कंहि गुर्मख हंयुसि ज्ञान जो, गैबी गुलेलो ।

अणहून्दो भोलो, मेटे वेठो मन मों ॥ १२० ॥

सामीजी कहते हैं इस छलिनी माया ने संसार में (ईश्वर और जीव के बीच) बिछोह डाल दिया है, तथा सभी मनुष्यों को भटका कर खोखला बना दिया है (आत्म धन से वंचित कर दिया है) । कोई गुरुमुख ही ज्ञान के रहस्य का गुलेल चलाकर अपने मन से माया के अस्तित्वहीन भ्रम को नष्ट कर सका है ॥ १२० ॥

रोलो विधो रन, जुदाईअ जो जग में ।

मारे मुंझाए सब खे, धारे नाना वन ।

सोंटो हंयुसि सम जो, कंहि जागये साधुजन ।

समुझी वेद वचन, सामी चढ़ियो चिटते ॥ १२१ ॥

इस छलिनी माया ने संसार में बिछोह डाल दिया है, (आत्मा तथा परमात्मा में बिछोह करा दिया है), तथा नाना प्रकार के रूप धारण कर

सबको उलझाकर नष्ट कर दिया है। कोई जागृत साधु पुरुष ही वेदों के वचनों को समझकर, समता रूपी सोटे (डंडे) से इस माया पर प्रहार कर आत्मज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो सका है ॥ १२१ ॥

वजे थी वही, खलिक त पंहिजे ख्याल में ।
त्रिले कंहि गुर्मुख कई सामी गाल्हि सही ।
चढ़ियो अन्भय अछ ते, पंजई दूत दही ।
करे राजु रही, बेगमपुरि शहर जो ॥ १२२ ॥

सामीजी कहते हैं कि मनुष्य अपने विचार-प्रवाह में बहते जाते हैं। कोई विरला गुरुमुख ही वास्तविक बात जानकर, पाँचों ही दूतों (काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार) को मारकर आत्मज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है तथा चिन्ताहीन देश का राज्य भोग सकता है (चिन्तामुक्त होकर आत्मानन्द में लीन रह सकता है) ॥ १२२ ॥

वजे सभि वहन्दी, खलिक खाम ख्याल में ।
त्रिले कंहि गुर्मुख लधी कृपा साणु कन्धी ।
चढ़ियो चेतन चिट ते, लिवं सां लकु बन्धी ।
मेटे चडी मन्दी, सामी सम सीतलु थियो ॥ १२३ ॥

लोग (माया के) व्यर्थ के विचार-प्रवाहों में बह जाते हैं। कोई विरला गुरुमुख ही (परमात्मा की) कृपा से किनारा ढूँढ़ पाता है (माया रूपी सागर से पार हो पाता है)। सामीजी कहते हैं कि वह प्रेम के रास्ते से ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है तथा समता अपना कर, भलाई एवं बुराई को मिटा कर शान्ति प्राप्त करता है ॥ १२३ ॥

वजे सभि वहन्दी, खलिक सभि ख्याल में ।
सति ज्ञाणी संसार जी, बिना नीर नन्दी ।
त्रिले कंहि गुर्मुख लधी, कृपा साणु कन्धी ।
जंहिखे प्रेम पन्धी, सामी द्विनी सतिगुरुअ ॥ १२४ ॥

सब लोग माया के विचार-प्रवाह में बहते जाते हैं, वे जल-रहित (असार) संसार रूपी नदी को सत्य मान बैठे हैं। (असार संसार को सत्य मान बैठे हैं)। सामीजी कहते हैं कि जिसे सतगुरु ने प्रेम का उपदेश दिया है, वह गुरुमुख भक्त ही गुरु की कृपा से किनारा ढूँढ़ सका है। (माया रूपी सागर से पार हो सका है) ॥ १२४ ॥

वजे सभि वहन्दी, खलिक खाम ख्याल में ।
 सति ज्ञाणी स्वप्न जी, बिना नीर नन्दी ।
 त्रिले कंहि गुर्मुख लधी, कृपा साणु कन्धी ।
 मेटे चडी मन्दी, सामी जुयो स्वरूप साँ ॥ १२५ ॥

सब लोग माया के व्यर्थ के विचार-प्रवाह में बहते जाते हैं। वे स्वप्न की जल-रहित (संसार रूपी) नदी को सत्य मान बैठे हैं (झूठे तथा असार संसार को सत्य मान बैठे हैं।) सामीजी कहते हैं कोई विरला गुरुमुख ही (परमात्मा की) कृपा से (माया रूपी सागर का) किनारा पा सका है तथा भलाई एवं बुराई को मिटाकर स्व-रूप (परमात्मा) से जा मिला है ॥ १२५ ॥

वजे सभि वही, खलिक त पंहिजे ख्याल में ।
 त्रिले कंहि गुर्मुख कई, सामी शालिह सही ।
 चढ़ियो अन्भय अछते, पंजई दूत दही ।
 करे राजु रही, बेहद बेगमपुरि जो ॥ १२६ ॥

सामीजी कहते हैं कि सब लोग तो अपने-अपने विचार-प्रवाहों में बहते जाते हैं; केवल कोई विरला गुरुमुख ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकता है जिससे कि वह पाँच दूतों (काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार) को मारकर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है; तथा चिन्ता रहित देश का राज्य करता है। (वह उस स्थिति को प्राप्त करता है जहाँ चिन्ता का नामो-निशान तक नहीं, केवल आनन्द ही आनन्द है और वह उस आनन्द का ही उपभोग करता रहता है) ॥ १२६ ॥

वजे सभि वहन्दी, खलिक खाम ख्याल में ।
 सामी लधी साध संगि, कृपा साणु कन्धी ।
 पहुतो पूरणु पद में, क्राबू कर्म बन्धी ।
 दया दर्दवन्दी, मुखि रखी मौजाँ करे ॥ १२७ ॥

सामीजी कहते हैं कि सब लोग व्यर्थ के विचार-प्रवाहों में बहते जाते हैं। कोई विरला मनुष्य ही साधुओं के संग तथा कृपा से (माया रूपी सागर का) किनारा ढूँढ लेता है और अपने कर्मों के बन्धनों को काटकर पूर्णपद को प्राप्त करता है, तथा दयालु और करुणामय (दूसरों के दुःख को जानने वाले परमात्मा) की ओर उन्मुख होकर आनन्द प्राप्त करता है ॥ १२७ ॥

विधा जीअ लुटे, माया सभि ममत्व में ।

ब्रधाई ब्याईअ जे, नोड़ीअ साणु घुटे ।

भर्म मंझि भुली करे, रात्यूं डींह भिते ।

सामी तडीं छुटे, जडीं पहुंचे पूरणु पद ते ॥ १२८ ॥

माया ने सब जीवों को मोह में डालकर लूट लिया है, तथा उन्हें द्वेष की रस्सी से बांध उनको सांसों को रोक दिया है (उन्हें बेहाल कर दिया है) । वे अपने (स्वरूप) को भूलकर दिन-रात भ्रमों में भटकते रहते हैं । सामीजी कहते हैं, वे (इन भ्रमों से) तभी मुक्ति पाते हैं जब कि पूर्णपद (आत्मपद) को प्राप्त कर लेते हैं ॥ १२८ ॥

विधा जीअ लुटे, माया सभि मर्म रे ।

ब्रधाई ब्याईअ जे, नोड़ीअ साणु घुटे ।

सन्से जे सोटियुनि साँ, रात्यूं-डींह कुटे ।

को ब्रिले जनु छुटे, जहिखे सामी मिल्यो सतिगुरु ॥ १२९ ॥

माया ने सब जीवों को लूटकर निर्लज्ज बना दिया है; तथा उन्हें द्वेष की रस्सी से बांधकर, उनकी सांसों को रोक दिया है (उन्हें बेहाल कर दिया है) । वह दिन-रात उन्हें भ्रम के डंडे से कूटती रहती है । सामीजी कहते हैं, जिस विरले-पुरुष को सद्गुरु मिल जाता है, वही इस (माया) से मुक्ति पाता है ॥ १२९ ॥

विधा सभि केरे, माया जीअ महल मों ।

छदयाई छल वल साँ, हिर्स मंझि हेरे ।

वेठो मूहुं फेरे, सामी चए स्वरूप खों ॥ १३० ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने सब जीवों को महल (आत्मपद) से गिरा दिया है (आत्मानंद से वंचित कर दिया है) । इस (माया) ने सब को छल या कपट से लालच में फँसा दिया है, अतः सभी लोग (परमात्मा के) स्वरूप से मुख मोड़ बैठे हैं ॥ १३० ॥

द्वे नितु माया मार, करे जेरि जीअनि खे ।

भवनि भौसागर में, रोअनि ज़ारौ ज़ार ।

कयुसि गुमु ग्याति साँ, कहिं हर्जन हुश्यार ।

जहिखे सुति सम्भार, सामी द्विनी सतिगुरुअ ॥ १३१ ॥

माया जीवों को अपने अधीन कर, उन्हें सदैव मार देती रहती है अतः वे अश्रु बहाते हुए अन्यन्त दुःखी होकर संसार-सागर में भटकते रहते हैं । सामीजी कहते हैं जिस हरि के प्रवीण भक्त को सद्गुरु ने

ज्ञान व बुद्धि दी है, वह अपने ज्ञान से उस (माया) को लुप्त कर देता है (माया से मुक्त हो जाता है) ॥ १३१ ॥

नाना रूप धरे, माया मोहे सभखे ।

भोग भोगाए भर्म जा, फुरे फकीरु करे ।

त्रिलो को गुर्मुख रहे, प्रेमी पाकु परे ।

जहिं द्वे नजर भरे, सामी द्विठो सतिगुरुअ ॥ १३२ ॥

माया नाना प्रकार के रूप धारण कर, सब (जीवों) को आकर्षित करती है तथा उन्हें भ्रमों के भोग भुगताकर, (विषय-वासनाओं में उलझा कर) और लूटकर फकीर बना देती है (आत्म-धन से वंचित कर देती है)। सामीजी कहते हैं पर पवित्र, विरला प्रेमी गुरुमुख व्यक्ति ही जिसे कि सद्गुरु ने (दया) दृष्टि से देखा है, वही इस (माया) से दूर रहता है ॥ १३२ ॥

नाना रूप धरे, माया मोहियो सभखे ।

सामी बचियो को सूर्मो, सतिगुरु सम्भारे ।

जाद्रे निहारे, ताद्रे सजणु सामुहों ॥ १३३ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने नाना प्रकार के रूप धारण कर सबको आकर्षित कर लिया है, पर कोई शूरवीर (ज्ञानी) जिसे सद्गुरु ने याद किया है (जिस पर सद्गुरु की कृपा है) वह इस (माया) से बच गया है; अतः अब वह जहाँ भी दृष्टि उठाता है, वहाँ उसे सामने प्रियतम (परमात्मा) ही दिखाई देता है ॥ १३३ ॥

पछिन्ता पलीतु, कया जीअ जहान जा ।

कोर्युनि में को हिकिड़ो, रहे अलेपु अतीतु ।

पर्ची लधो जहिं पंहिजो, आदी अन्भय मीतु ।

सदाई सुर्जीतु, सामी रहे स्वभाव में ॥ १३४ ॥

सामीजी कहते हैं कि नश्वर-मायावी प्रपंच ने संसार के जीवों को पलीत (अपवित्र) कर दिया है। करोड़ों में से कोई एक ही इस (माया) से अलग एवं निर्लिप्त रहता है। जिसने प्रेम से अपना आदि-ज्ञान रूपी मित्र ढूँढ लिया है। (जिसने आत्मज्ञान को ही अपना मित्र बना लिया है), वह सदैव जागृत होकर अपने ही भावों में (मस्त) रहता है ॥ १३४ ॥

पछिन्ता पलीतु, कया जीअ जहान जा ।

सामी थियो को साध संगि, प्रेमी परम पुनीतु ।

जागी जहिं जुगति साँ, जीत्यो मनु अजीतु ।

तन में तुर्यातीतु, प्रत्क्षु द्विसे पाणखे ॥ १३५ ॥

सामीजी कहते हैं कि नश्वर-मायावी प्रपंच ने संसार के जीवों को पलीत (अपवित्र) कर दिया है। वह परम प्रेमी ही साधुओं के संग से इस (माया) से पवित्र (अप्रभावित) रह सका है जिसने जागृत होकर (ज्ञान की) युक्ति से अजीत मन को जीत लिया है एवं अपने शरीर (आप) में ही साक्षात् चेतन परमात्मा को प्रत्यक्ष देखा है ॥ १३५ ॥

पछिन्ता पिटाए, मारे मूर्खनि खे ।
पाणु पंहिजो पाण में, वेठा विजाए ।
सुत्ह सिधि स्याणनि द्विठो, उल्टी लिबं लाए ।
पूरणु पद पाए, सामी माणिनि सान्ति सुखु ॥ १३६ ॥

नश्वर-मायावी प्रपंच मूर्खों (अज्ञानी लोगों) को भटका-भटका कर मार (नष्ट कर) देता है। वे अपने अहं में अपने आप (स्वरूप) को खो बैठे हैं। सामीजी कहते हैं कि बुद्धिमानों ने (संसार से) विरक्त होकर, प्रेम से अपने आप (परमात्मा) को देखा है अतएव वे पूर्ण-पद प्राप्त कर आत्म-सुख लूट रहे हैं ॥ १३६ ॥

पिटीअ खों पालो, त्रिलो को गुर्मुख रहे ।
जंहिखे दिनो सतिगुरूअ, निर्भय नवालो ।
करे न कतर जेतो, कल्पत कशालो ।
सदा सुखालो, सम वर्ते सामी चए ॥ १३७ ॥

दुष्टा माया से वही विरला गुरुमुख दूर रहता है, जिसे सद्गुरु ने निर्भय बना देने वाला (ज्ञान का) उपदेश दिया है। सामीजी कहते हैं कि वह रत्ती भर भी कष्टदायिनी (माया) का कष्ट नहीं उठाता है बल्कि समता का व्यवहार कर, सदैव सुखी रहता है ॥ १३७ ॥

फाहीअ विन फथो, सभुको माया मोह में ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, मूर्ख हणनि मथो ।
त्रिले कंहि गुर्मुख जो, सामी भर्मु लथो ।
लोई शाल खथो, ज्ञाणे अन्भय उन जो ॥ १३८ ॥

सब (जीव) माया-मोह की फन्द-रहित (झूठी) फाँसी में फँस गये हैं। (माया की झूठी एवं काल्पनिक फाँसी में फँस गये हैं)। वे मूर्ख संसार को सत्य मानकर व्यर्थ ही अपना सिर खपा रहे हैं (कष्ट उठा रहे हैं)। सामीजी कहते हैं उसी विरले-गुरुमुख का ही भ्रम दूर हुआ है जिसने कम्बल, शाल तथा कफ़न को एक ही ज्ञान रूपी ऊन

से बना हुआ समझ लिया है। (जो सब मनुष्यों में एक ही आत्मा का दर्शन कर प्रेम करता रहता है वही आत्मज्ञानी है।) ॥ १३८ ॥

फाहीअ रे फाथी, खलिकत खाम ख्याल में ।
सामी मारे सभ खे, स्वप्न जो हाथी ।
जागी कंहि जतन रे, ओति पोति लाथी ।
सदा संग साथी, द्विसे अन्भय आत्मा ॥ १३९ ॥

सामीजी कहते हैं कि सभी लोग विचारों की फन्द-रहित झूठी फाँसी में फँस गये हैं, स्वप्नवत् (संसार-रूपी) हाथी सब को मारता रहता है (सांसारिक बातों में ही अपना अमूल्य जीवन नष्ट करते रहते हैं)। किसी एक जागृत व्यक्ति ने ही बिना यत्न (आसानी से यह झूठा आवरण हटा दिया है। वह सदैव आत्मा को ही अपने साथी के रूप में देखता है ॥ १३९ ॥

फुरे फिकिल साणु, सभखे माया मोहिणी ।
लड्डू खाराए लोभ जा, करे महबत माणु ।
रहे अलेपु आकास जाँ, को साधू जनु मुजाणु ।
पले रख्याऊं पाणु, सामी भेद भर्म खों ॥ १४० ॥

मोहिनी माया ने सब (जीवों) को अपने फँदे में डालकर लूट लिया है। वह झूठे प्रेम से सब को लोभ के लड्डू खिलाती है। सामीजी कहते हैं, कुछ सज्जन साधु-जन ही भेद तथा भ्रम से अपने को दूर रखकर, आकाश की तरह निर्लिप्त रहते हैं ॥ १४० ॥

ब्रधनि खे बोड़े, थी सामी लहर समुन्द्र जी ।
तिनिखे चए कीन की, जे सन्त छडिया छोड़े ।
वेठा मूहुं मोड़े, जगत खों, जगदीस डे ॥ १४१ ॥

सामीजी कहते हैं (माया में) बँधे हुए लोगों को समुद्र की लहर (सांसारिक झंझट) डुबो देती है। पर जिन्हें, सन्तों ने (माया से) मुक्त कर दिया है, उनका वह कुछ भी नहीं बिगाड़ती है, अतः वे संसार से मुख मोड़ कर जगदीश्वर की तरफ मुख किये बैठे हैं ॥ १४१ ॥

ब्रधी कयो ब्रान्हो, माया मूर्खनि खे ।
खसे खाम ख्याल साँ, खिम्या खजानो ।
सामी बचियो साध संगि, को दर्दबन्द दानो ।
निर्भय निशानों, द्विठो जंहि अन्भई ॥ १४२ ॥

माया ने मूर्खों को बाँध कर गुलाम बना दिया है। वह व्यर्थ के विचारों से (उन्हें व्यर्थ के विचार प्रवाह में उलझाकर) उनका आत्मिक खजाना छीन लेती है। सामीजी कहते हैं कि कोई बुद्धिमान् प्रेमी ही साधुओं के संग से इस (माया) से बच गया है तथा अन्तर्मुख हो कर निर्भय निशान (निर्भय बना देने वाले परमात्मा को) देख लिया है ॥ १४२ ॥

ब्रधो सभु जहानु, माया फासीअ फन्द रे ।
पर्ची रहनि पिण्ड साँ, भुलाए भगवानु ।
जागी कढनि कीन की, अन्दर मों अभिमानु ।
को सामी पुरुष सुजानु, समुझी चढ़ियो सीर ते ॥ १४३ ॥

माया ने सारे विश्व को बिना फन्दे वाली फाँसी से बाँध लिया है अतः वे (संसार के लोग) परमात्मा को भूल कर शरीर में ही प्रसन्न रहते हैं (शरीर से ही प्रेम करते हैं)। सामीजी कहते हैं कि वे जागृत हो कर हृदय से अभिमान नहीं निकालते हैं, केवल कोई सज्जन पुरुष ही सोच समझकर परमात्मा की ओर उन्मुख होता है ॥ १४३ ॥

ब्याईअ मंझि बुद्धी, मूर्ख मोआ केतिरा ।
सामी को साधू लंघे, पियो कृपा साणु कुद्धी ।
चाढ़ी जंहि गुर ग्याति साँ, गगन मंझि गुद्धी ।
तोड़े करे लाडु, लुद्धी, तांभी सीतलु रहे स्वभाव में ॥ १४४ ॥

कितने ही मूर्ख द्वैत (रूपी समुद्र) में डूब कर मर गये हैं। सामीजी कहते हैं कोई साधु ही (परमात्मा की) कृपा से छलाँग मार कर पार हो गया है एवं गुरु के ज्ञान से उसने अपने प्राण दसवें द्वार† में चढ़ा दिये हैं। यद्यपि लटके वाली (माया) उससे लाड़-प्यार करती रहती है (उसे अपनी ओर आकर्षित करती है) फिर भी वह अपने ही भावों में शीतल (शान्त) रहता है ॥ १४४ ॥

† दसवाँ द्वार—मानव-शरीर के अन्दर नौ छिद्र हैं, जिनमें दो छिद्र नाक के हैं, दो कान के हैं, दो आँखों के हैं, एक मुँह, एक लिंग, एक गुदा का। दसवाँ द्वार ब्रह्मरन्ध्र कहलाता है। यह मस्तक के मध्य में माना जाने वाला एक छेद है, जिससे होकर प्राण निकलने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होना माना जाता है। जो साधक ब्रह्मरन्ध्र की साधना कर लेता है, वही ज्ञानी कहलाता है।

परिचारिकैयर् सुरसु-

दरियर् पौडवट्टु पूजिपं पुरूहुतं

पुरदेवने पैर्मगनेने

मरुदेविय महिमे वणिणसल्बंपुदे ॥ ९७ ॥

अवतंसं तन्नगुण

स्तवनं धरेगेनिसि नाभिराजं धरणी

युवतिगे मरुदेविये दल्

सवतियेनल् सुरवदिनरसुगेय्युत्तिर्दं ॥ ९८ ॥

अंतिपुंदुं—

मरुदेविगे पुट्टिटदपं * पुरुदेवं बंदु दिवदिनेबवधियिना

पुरूहूतनरिदयोध्या- * पुरमं नाडाडियल्लदंतिरे पडेदं ॥ ९९ ॥

नाडौळ् कौशलदेशमोदे पुरदौळ् साकेतमोदीक्षण

क्रीडावासमेनल् पुरंदरनलपि नाभिराजंगवं

माडिट्टं करुविट्टु मन्मयने वण्णंगेयदनंदंदौडा-

नाडं बीडुमनोदे नालगेयोळिन्नेवणिणं वणिणं ॥ १०० ॥

बीडु सुकृतक्के चेल्वि * गाडुंबीलनाश्रमं सुखक्केने पेरतें

नाडाडिय नाडल्लदु * नाडौळ्गुत्कृष्टमल्ले कौशलदेशं ॥ १०१ ॥

पर्वतसानु सर्वमणियि पळु सर्वफलद्रुमंगळि-

दुर्वरे सर्वसस्यदोदवि तरु गुल्म लता वनस्थलं

वृषभदेव जिसके ज्येष्ठ पुत्र हैं, ऐसी मरुदेवी की महिमा का वर्णन करना असंभव है। ९७ गुण-श्रवण ही मानो उसका कर्णभरण था। मरुदेवी उस (नाभिराज) की भूमि की मानों सौत थी। वह सुख से राज्य करता था। ९८ देवेन्द्र ने अवधिज्ञान से यह जानकर कि मरुदेवी के गर्भ से पुरुदेव जन्म लेगा उसने (देवेन्द्र ने) अयोध्या नगर को सजाया। ९९ देशों में केवल कौशल देश और नगरों में साकेतपुर ही श्रेष्ठ है। यह सोचकर देवेन्द्र ने आनन्द से नाभिराज के लिए मन्मथ द्वारा उनका निर्माण करा दिया। तब उस देश और नगर का वर्णन एक जीभ वाला व्यक्ति कैसे कर सकता है? १०० वह देश जो सुकृतियों का निवास स्थान, सौंदर्य का क्रीडास्थल, सुखों का आश्रय स्थान है, सामान्य देश नहीं है—देशों में कौशल देश ही सर्वश्रेष्ठ देश है। १०१ पर्वत अनेक तरह के रत्नों से, अरण्य फल-भरे पेड़ों से, भूमि सस्य-समृद्धि से, वन के पेड़-पौधे-लताएँ, सर्वऋतुओं के प्रभाव से, समस्त लोग

सर्व ऋतु प्रवेशदिनशेषजनं परिपूर्ण लक्ष्मियं
सर्वगुणगळिदेसैये सर्वसुखावहमा महीतलं ॥ १०२ ॥

आमर्दं मुंदिडे मंदहासमलग्णं बैळ्दिंगळं बीरे तो-
ळ मौदलग्गैदे पौदळ्दि पैमौलेगोडंगळ् सूसे लावण्य तो-
यमनालोकनमात्रदिं मरेदु पांथश्रेणि नीरळ्केयं
श्रममं तीरमेयं प्रपागनेयरं कण्णावुदादेशदौळ् ॥ १०३ ॥

तीविद तिळिगौळ्दि पौ-
न्दावरैगौळ्दिदरल्द नैय्दिलगौळ्दि-
दावलगौळ्दि चैल्वि-

गावासमैनिप्पुवोप्पुवा नाडूंगळ् ॥ १०४ ॥

कलकंठक्कतनुगे चा-

पलतारोहण विकारवळिगाम्ना कुजा-
वलिंगे मधुविकृति मानव-

कुलक्के कनसिनौळ्मिनिविल्ला नाडौळ् ॥ १०५ ॥

समरत संजनित परि-

श्रममं दंपतिगे कळैदु मगुल्दुं रतिरा-

गमनिरदौदविपुदु नवो-

द्गम परिमळविषयमैनिप विषयसमीरं ॥ १०६ ॥

सर्व-सम्पत्ति एवं गुणों से युक्त होकर समस्त सुखों का उपभोग करते थे । इस प्रकार कौशल देश शोभा देने लगा । १०२ वहाँ, राही राह में जलदान करने वाली स्त्रियों के मंदहास में अमृत को और स्पृष्टित नेत्रों में चाँदनी को देखकर, बाहुमूल तक व्याप्त उनके कलश तुल्य कुचों का अवलोकन करके, अपनी प्यास तथा थकावट को भूलकर उनकी रूपराशि को पीने में ही लीन हो जाते थे । १०३ जहाँ देखें वहाँ शुद्ध पानी के तालाबों से, लाल कमलों के सरोवरों से, उस देश के गाँव सौंदर्य के निवास स्थान बनकर सुशोभित थे । १०४ असह्य रूप केवल कोयलों तक, चपलता की उड़ान का विकार केवल भ्रमरों तक, ऋतुवती की विकृति केवल आम्रवृक्षों तक ही सीमित थी—मानव कुल में, स्वप्न में भी, वे (अवगुण) नहीं थे । १०५ दम्पतियों द्वारा समान रूप से अनुभूत रतिकेलि की थकावट को दूर करने वाली (घटाने वाली) सुगंध को, वहाँ बहने वाली मंद हवा अपने साथ ले आती और पुनः रतिक्रड़ा में प्रवृत्त करा देती थी । १०६ इस तरह जब विषम सुख रूपी मणिमय दर्पण

आ विषय विलासिनिगे मणिमय मुकुरमैनिसि—
 कण्णवैयिक्कदारु ऋतुवुं बनमं सिरि केट्टवौलंगळं
 कण्णवैयिक्कदल्लि पथिकर् गिळिसोवबलाजनंगळं
 कण्णवैयिक्कदीक्षिसे पुरं सुरलोकमनेकै रिक्कटं
 कण्णवैयिक्कदेदु नगुगुं निजरत्नगृहांशु जालदि ॥ १०७ ॥

आ पुरदुपवनदौळसमशर किशोरकेसरि गजरि गर्जिसद
 कृतक गिरिगळिल्ल, मनोजराज विजयकेतन सफर संचारमिल्लद
 सरोवरगळिल्ल, रतिपतिय पूगणैय दौणैगेदरद पूदोटमिल्ल,
 कुसुमसर कोपशिखियनुघमुरिपद तण्णाळियिल्ल, रतिय लावण्य
 रसप्रवाहदि पल्लविसद चूतवनमिल्ल, कामराग रसमं काळपुरं
 माडदशोकवनमिल्ल, कंदर्प दंदशूकमावरिसद चंदन नंदनंगळिल्ल,
 मनोजराज नीराजन दीपकलिकैयं बैळगद चंपकवनमिल्ल,
 पंचबाण कृपाण पट्टदौडने कौनेय बिण्पिं तौनेदु तूगद पूगवनमिल्ल,
 मदनमोहांधकारमं केदरद तमाल वनमिल्ल, रतिय मधुपान गोष्ठिय
 सुवर्णचषकमनव कर्णिसद कर्णिकारमिल्ल, मकरध्वज विजय-
 लक्ष्मि नलिदु नर्तिसद दवनद मंदवनद वेदिकैगळिल्ल मधुमहादेवि

के समान अपलक छः ऋतुएं वहाँ के वनों को, ऐश्वर्यलक्ष्मी खेतबाड़ियों को, राही जन में जलदान करने वाली अबलाओं को देखते हैं, तब रत्न-
 भवनों की कांति स्वर्गलोक की सम्पत्ति को लजा देती हैं । १०७ उस नगर
 के उपवन में ऐसा कोई कृतक (बनावटी) पर्वत नहीं जहाँ मन्मथ नामक
 सिंहशिशु न गरजा हो; ऐसा कोई तालाब नहीं जहाँ कामदेव की विजय-
 ध्वज में रहने वाली मछली का संचार न हो; ऐसी पुष्पवाटिका नहीं
 जहाँ के पुष्प कामदेव के पुष्पबाणों के तरकश में प्रवेश न पावें; ऐसा
 समीर नहीं जो पुष्पबाण की अग्निज्वाला को प्रज्वलित न कर दे; ऐसा
 कोई आम्रवृक्ष नहीं जो रतिदेवी के लावण्य-प्रवाह से अंकुरित न हो;
 ऐसा कोई अशोकवन नहीं जो कामक्रीडा-रस को वन का प्रवाह न
 बना दे; चंदन का ऐसा कोई बाग नहीं जहाँ कन्दर्प नामक साँप का
 संचार न हो; चम्पा का ऐसा कोई बगीचा नहीं जहाँ कामदेव का दीप
 प्रकाशित न हो; सुपारी का ऐसा कोई बाग नहीं जो कामदेव के खड्ग
 की मूठ के साथ हर्ष के भार से झूम न उठे; तमाल का ऐसा कोई वन
 नहीं जहाँ मद (काम) का मोहांधकार न फैला हो; टीले पर खिलने
 वाला ऐसा कोई वनकमल नहीं जो रतिक्रीडा-मधुपान-गोष्ठी की सुवर्ण-
 थाली को नीचा न दिखा दे; वन की ऐसी कोई वेदिका नहीं जहाँ

पट्टंगट्टद माधविगळिल्ल, कंतुदंति विसटंबरियदेलायन
 वीदिगळिल्ल, मदन जगद्वशीकरण तिलकमेनिसद तिलकवनमिल्ल,
 मनोभव विजयमं निराकुळं माडद वकुळमनमिल्ल, चित्तजन
 कीर्तिलतैय बित्तु मौदलैनिसद विकच विचकिल वल्लरिगळिल्ल,
 पुष्पशर वशीकरणमंत्रमं पदं गुट्टद कोगिलैगळिल्ल, स्मरन
 विरुदिनंकमालेयनोददरगळिगळिल्ल, अंतःकरण समुद्भवचाप
 टंकृत मनलंकरिसद मधुकरंगळिल्ल, जलदेवतैगे कलकूजनमनुपदेश-
 गैय्यद सारसंगळिल्ल, मन्मथंगै पथिकरं पिसुण्वेळिद पारावतंगळिल्ल,
 दर्पकन दर्पावलेपमनुद्दीपनंमाडद रथांगमिथुनगळिल्ल, वनदेवतैगे
 पीलिदळैयनेत्तद सोगैनमिल्लगळिल्ल । अदल्लदैयुं—
 पौरवनंगळोळ कुसुम सौरभ सार समीर मंद सं-
 चारमै पांथळ्ळैदैयनादिसुवंगज बाणमोक्ष हुं-
 कारमै बडनुंडु ननेगौवुगळि मौरैदेळ्वि भृंगझ-
 कारमै माळ्पुदार बगेगं मदनोत्सव हर्षभारमं ॥ १०८ ॥

कामदेव की विजयलक्ष्मी ने नृत्य न किया हो; ऐसी कोई माधवी-
 लता नहीं जो मधु नामक महादेवी का झूला न बनी हो; इलायची-वन
 का ऐसा कोई मार्ग नहीं जहाँ से होकर कामदेव रूपी हाथी स्वच्छंद
 न घूमा हो; तिलक-वृक्ष का ऐसा कोई वन नहीं जिसे कामजगत् ने अपने
 वश में न किया हो; बकुल का ऐसा कोई वन नहीं जिस पर कामदेव
 ने अपनी विजय को सार्थक न किया हो; ऐसी कोई मोगरा-लता नहीं
 जिसमें कामचक्रेश्वर की कीर्तिलता का बीज प्रथमवार न कहलाया हो;
 (मोगरा-लताओं पर अपनी कीर्तिलता का बीज सर्वप्रथम कामदेव ने ही बोये);
 ऐसी कोई कोयल नहीं जिसने कामदेव का वशीकरणमंत्र न गाया हो
 ऐसा कोई तोता नहीं जिसने मदन की उपाधि-माला न पहनी हो; ऐसा
 कोई भ्रमर नहीं जिसने कामदेव के धनुष की झनकार को अलंकृत न
 किया हो; ऐसा कोई हंस नहीं जिसने जलदेवता को कलकल-रव का
 उपदेश न दिया हो; राहियों से मन्मथ की शिकायत न करने वाले तोते
 नहीं; कामदेव की उद्दंडता को बढ़ाने में सहायक न बनने वाले चक्रवाक-
 युग्म नहीं; वनदेवता के लिए अपने परों का छत्र न उठानेवाले कोयल
 नहीं हैं । इसके अतिरिक्त—पुर वनों में फूल की सुगंधि को लेकर
 चलने वाली हवा, पथिकों की छाती को कँपा देने वाले कामदेव के
 धनुष की टंकार, फलों के मधु को चूसकर उड़ने वाले भ्रमरों की झनकार
 आदि, सबके मन में कामोत्सव का आनंद उत्पन्न करते हैं । १०८ आम,

सहकाराशोक रंभा तिलक वकुळ पुन्नाण कर्पूरवल्ली
गृहदोळ बालप्रवाळास्तरण दरदळन्मल्लिकातल्प शोभा
वहदोळ मेय्वेचें नाना वनविहग रवं तम्म संभोगकेळी
कुहरण्यापारदिदुर्पुदु पुरवनदोळ वारनारीकदंब ॥ १०९ ॥

पदेपं बीरुगुमापुरोपवनदोळ पेण्डुबिर्विडि करं-
गिद नेय्दिळ्गोळनचेंविडनीळकोडंभोजपंडं तळि-
पुदिदेलावनवोड्डुगोड कदलीकांडं तरंगोड चू-
तद साल चंदनवीधि संपगेय जोपं माधवी मंडपं ॥ ११० ॥

वनज वनराजि कूज-
द्वनविहगविराजि पुर बहिःपुर केळी
वनदोदवु रतिय पौसजौ-
वनदोदवेने नेरेंये पौगळलावं नेरेंवं ॥ १११ ॥

बेविडिदु काय्त पलसेळ
नीर्वनलं करेव तेंगु पौबाळेगळि
सोर्वडकेय ससि बेळगं
पेर्वेलेवळिळगळे सौगयिकुं पुरवनदोळ ॥ ११२ ॥

अंतु कंतुगज विहारवीधियुं सुकृत सुरभि संचार क्षेत्रमुं

अशोक, रंभा, तिलक, वकुल, अवनिजात कर्पूर लताओं के मंडपों में अधखिले मोगरा, तल्प में विचरण करने वाले नानापक्षी-समूहों के कल-कल-निनाद के बढने पर पुरवन की वारांगणाओं का समूह अपने विलास-व्यापार में लीन था । १०९ भ्रमरियों के समूह से काला हुआ कमलों का सरोवर, हंसों के समूह से युक्त कमलों का समूह, अंकुरित इलायची वन, कतार में खड़े कदली के वृक्ष, पल्लवित आम्रवृक्ष, चंदन के वृक्ष, चंपा के गुच्छे, माधवी-मंडप आदि दर्शकों को आनंद प्रदान करते थे । ११० कमलरस पीकर उड़ने वाले भ्रमर, अपने कलरव से नगर के भीतर और बाहर सुस्वर बिखेरने वाले पक्षियों में नवयौवन जगाते हैं । इन सबका गुणगान करने में कौन समर्थ है ? १११ पकने के लिए तैयार कटहल और श्रीफलजल का प्रवाह बहाने वाले नारियलों का नीर, सुवर्ण के समान रंग वाले पत्तों सहित झूमते हुए सुपारी के पेड़ और कांति फैलाने वाली ताम्बूललता पुरवन में सुशोभित थीं । ११२ इस तरह यह नगर कामदेव के मदमाते हाथी का विचरण-मार्ग, कामधेनु का संचार-क्षेत्र,

नेत्रापुत्रिका प्रसाधन सदनमुं लक्ष्मीलीलालास्य मांगल्यरंगमुमेनिप
 पुर वहिःपुरदिदौळगे—
 बडवानलगे सेडेदि- * गडले सरणबोक्कुदमरशैलमनेवी
 पडेमातं निर्गादिगे * पडेयुत्तुं पौन्नकोटैय बळसिर्कु ॥ ११३ ॥
 चैबोन्न कोटै परिवे- * षंबेतोळनेसरंते नीर्गादिगेयं
 तुंबिद नीर्वूगळ पल- * वुं बण्णदिनार कण्णुमुं सेरेगेय्युं ॥ ११४ ॥
 मंदर कंदरमेवी * सदैर्गादि मीरिसूतनं कीरि निज
 स्पंदनमं कोटैगे भर- * दिदैरेगुं कच्चि कीरनिनन हयंगळ् ॥ ११५ ॥

मुगिलट्टळैगळ कैलदं

बुगंडियि नुसुळ्दु नडैव दिनकरन हयं
 गगनाध्व खेदमं पर-

॥ ११६ ॥ यिगेगळ तण्णेळर तीटदिं तौलगिसुगुं ॥ ११६ ॥

अंतलंघ्यमुमभ्रंकष विविधाट्टालकमुमेनिप कनक प्राकारदि—

दौळगे—

बरेद विचित्रपत्रनिचयं निजलोचन चंद्रिकापरं
 परे नडेनट्टु सोर्व शशिकांतद केर्गळ नीर्वोन्निर्गळि
 परेये कनल्दु कण्णे किमुगण्चि हरिन्मणिभित्तिभागदौळ
 पुरवनिनाजनं बरेयुतिर्पुदभंगुर पत्रभंगमं ॥ ११७ ॥

आँखों की पुतलियों का अलंकार-गृह एवं लक्ष्मी की नृत्यरंग-भूमि बना था। इस नगर के बाह्य प्रदेश में—स्थित जलाशय इस बात को सत्य बना रहा था मानो दावानल से भयभीत क्षीरसागर देवगिरि की शरण में आया है। ११३ सुवर्णमय किला, वेश धारण किए हुए सूर्य के समान, जलाशय में सुशोभित रंग-बिरंगे फूलों से, किसी को भी आकर्षित कर सकता था। ११४ इस संदेह से कि यह मंद पर्वत है या जलाशय है, सूर्यदेव के रथ के घोड़े सारथी की पर्वाह न करके रथ को तेजी से किले के पास खींचते थे। ११५ बादलों की पंक्तियों के पानी के छिद्रों से छन कर संचार करने वाले सूर्य के रथ के घोड़ों की आकाश-प्रयाण की थकावट को ध्वजों की ठंडी हवा दूर करती थी। ११६ नगर की स्त्रियाँ अपने द्वारा चंद्रकांत शिलाओं की भित्तियों पर लिखित—विचित्र चित्र समूह को, अपनी दृष्टि उस पर टिकने के कारण पिघल कर उस जल प्रवाह में तैरते हुए देखकर कर कुपित होकर नीलमणि की भित्तियों पर पुनः शाश्वत चित्र लिखने लगीं। ११७ अपनी हथेली की लालिमा से

औदविद तम्म कैदळद कैपुगळि गिळि पद्मराग र-
त्नद गिळियंतै तम्म नयनांचल चंद्रिकीयि नवेंदुका-
न्तद गिळियंतै कौतुकमनाक्षणदौळ कुडै नोडि नोडि मा-
यद गिळियेंदै पंजरदौळिक्कुवरोदिसलंजि मुग्धेयर् ॥ ११८ ॥

तुंगकुचकुंभयुगवंगजगजं मौगवडंगळैदुदेनिसै विगतांचलमपांगं
मींगेळसुविदुकिरणंगळैने कर्णयुगळंगळवतंस मणियं बळसै घर्मो-
दंगळिरे नौसलौळैदिगळमदिन पनि य पांगनौळकौडु
नळितोळनलिदुनीळु-

त्तगभव पाशमेने पिंगदरेवुदु घट्टियं गडणदि गडणदि
गट्टिवळ्त्तियरतंडं ॥ ११९ ॥

नरुसुय्यं मालैगं सूळरिदैरगुविनं तुंबिगळ् नोडिदेर्म-
यमरेवन्नं बाहुमूलं पौगरनुगुविनं कण्मलर् बळ्ळिमिचं
करेवन्नं मालैवूवं नेगपि सौगयिकुं नीररौळ् पुष्पचापं
गुरियेसं तोरलंबं पौदैगेदरिदवोल् पुष्पलावीकदंबं ॥ १२० ॥

सुरपन वज्रमुं हरिय कौस्तुभमुं हरनिदुलेखेयुं
वरुणन मुत्तिनेक्कसरमुं गरुडांगद पच्चेयुं पणी-

तोतों को लाल रंग के पद्मराग रत्न के तोतों के समान एवं अपनी कनखी (कटाक्ष) के प्रकाश से चंद्रकांत शिला को तोतों के समान बना दिया तो स्त्रियों ने चकित होकर उन्हें माया के तोते समझ कर, बात सिखाने में हिचक कर, उन तोतों को तुरन्त पिंजरे में बंद कर दिया । ११८ कामदेव के मदमस्त हाथी के समान रहने वाले कुचकलश मुख के साथ आंखमिचौनी करते थे, कनखी (कटाक्ष) पानी में रहने वाली मछलियों को घेरने वाली चंद्रकिरणों के समान और कान कर्णभरण के रत्नों को घेरे थे, और पसीने की बूंदें अमृत-बिंदु के समान साथे पर सुशोभित थीं, ऐसे में अपनी कोमल सुन्दर बाहों को डुला-डुलाकर स्त्रियाँ वहाँ चन्दन घिस रही थीं । ११९ पुष्पमाला की सुगंधी की ओर जिस तरह भौरे आकर्षित होते हैं (लपकते हैं) उसी तरह उनकी बाहों का सौंदर्य देखने वाले अपनी सुधबुध खो देते थे; उनकी आंखों की चमक लघुबिजली को बुलाती सी प्रतीत होती थी और पुष्पमाला को उठाकर फुलवाड़ी इस तरह सुशोभित दिखाई दे रही थी मानो कामचक्रेश्वर विरहियों पर अपने पुष्पबाणों का निशाना लगा रहा हो । १२० यहाँ के रत्नों की दुकानें इन्द्र के वज्र, विष्णु के कौस्तुभाभरण, महेश्वर की

श्वर फणरत्नमुं बेलैगे विण्णिदुवल्लमेनिप्प पैपिनि-
देरडनेयब्धिरन्नवसरं गेलेवन्दुदु रोहणाद्रियं ॥ १२१ ॥

वनजं पंकांकितं गोवळितिय मौलैयोत्तिगे पक्काय्तु गोव-
र्धन वक्षोभागमौर्वज्वलन बहुल धूमाकुलं पाल मुन्नी-
रनपायस्थानमैदा पुरवरद वणिग्वाट हर्म्यगळौळ मु-
न्निन संचारस्वभावं परिपडै पदेपि लक्ष्मीनिश्चितमिर्पळ ॥ १२२ ॥

दिविज विमानं माडद-

विवु माडिदुवैव भेदमल्लदे चेल्विं
नवरत्न रचनेयि भे-

॥ १२१ ॥ ॥ १२२ ॥ ॥ १२३ ॥ ॥ १२४ ॥
दविल्ल तत्पुरद भवनमेनितनितरीळं ॥ १२३ ॥

इरूळुं पगलुं पुरदौळ

बैरसिर्पुवु

पद्मरागगृहदेळविसिलि

हरिनीलगृहद तमदु-

॥ १२३ ॥ ॥ १२४ ॥ ॥ १२५ ॥ ॥ १२६ ॥
ब्बरदि शशिकांतगृहद चंद्रातपदि ॥ १२४ ॥

शिल्पि गड कल्पपतिसं-

कल्पं रत्नोपलं दळं गड शोभा

चंद्रकला, वरुण के मोती की एकावली माला, गरुड़ के रत्न और महाशेष की मस्तक-मणि से भी बढ़कर हैं। वे (दुकानें) द्वितीय समुद्र के समान मेरुपर्वत को भी नीचा दिखाती हैं। १२१ लक्ष्मी यह सोचकर कि कीचड़-स्पर्श (स्पर्श) से कमल कलंकित हुआ; गोवर्धन के सीने पर ग्वालिन के स्तनों का स्पर्श हुआ; क्षीरसागर बड़वानल से उठे धुवें से भरा होने के कारण (क्षीरसागर) खतरनाक है, वह (लक्ष्मी) पहले के अपने संचारी (चंचल) स्वाभाव को त्यागकर उस नगर की दुकानों के मार्गों में निश्चित (स्थिर रूप से) निवास करने लगी। १२२ देव-विमान अन्यो से निर्मित नहीं हैं; वस इतना ही अन्तर है कि यहाँ के घर मनुष्य से निर्मित हैं इसके अलावा नवरत्नों से निर्मित इस नगर के भवनों एवं देव-निर्मित विमानों में कोई अन्तर नहीं है। १२३ इस नगर में माणिक्य-भवन की मंद धूप से, इन्द्रनील रत्नगृह के अंधकार से, चंद्रकांतशिला-भवन की चाँदनी (प्रकाश) से, रात और दिन परस्पर मिश्रित हुए (घुलमिल गये) से दिखलाई देते थे। १२४ रत्न-मणियों से नगर निर्माण का संकल्प करने वाला कल्पपति नाभिराज ही स्वयं शिल्पी है, तो उस नगर को शोभा का निवासस्थान न कहने वाला मूर्ख कहलाएगा। १२५

विश्वामित्र ॥ भाई लक्ष्मण लिई श्रीराम् हिंड्याथ्या जसै ।
आश्रम् गौतमको पन्यो नजरमा गंगा-किनारमा तसै ॥
आश्रम्का नजिकै असल् फल सहित् फूलको बघैचा थियो ।
जन्तु नाम् त थियेन कोहि तपनी संभार् बिना त्यो थियो ॥ ८८ ॥

मालुम् राम्कन क्या कहीं कमि थियो जो ता जगत्का धनी ।
सोध्या तैपनि यो असल् छ किन हो रित्तै बघैचा भनी ॥
विश्वामित्र थिया सबै गुणनिपुण विस्तार् सुनाया पनि ।
गौतमको अधि बस्ति हो अब भन्या छैनन् यहाँ कवै पनि ॥ ८९ ॥

भार्या गौतमकी समान गुणकी भक्तै अहिल्या थिइन् ।
ब्रह्माकी ति त पुत्रि हुन् गुणि हुँदा सब खुश् गराई लिइन् ॥
गौतम् कार्य-निमित्त दूर जब गया रूप गौतमैको सरी ।
धारी गौतम-पत्निका नजिकमा इन्द्रै अगाडी सरी ॥ ९० ॥

आई भोग विलास गरेर खुशि भै फर्की गयाथ्या जसै ।
देखता गौतमलाई गौतमजिले आश्चर्य मान्या तसै ॥
आफ्नू रूप दुरुस्त देखिकन खुप् गौतम् रिसाया पनि ।
सोध्या होस् तँ कउन्? बता नहि भने हेर् भस्म गर्छु भनी ॥ ९१ ॥

विश्वामित्र तथा भाई लक्ष्मण को साथ लिये श्रीराम जी जा रहे थे । उन्होंने गंगा नदी के किनारे स्थित गौतम ऋषि का आश्रम देखा । आश्रम के निकट एक सुन्दर फूलों से भरा उद्यान देखा; सांभर (हरिण) के अतिरिक्त अन्य कोई भी पशु वहाँ न था । ८८ जगत्पति राम को क्या नहीं मालूम था । तिसपर भी उन्होंने इस सुनसान उद्यान के विषय में पूछ लेना ही उत्तम समझा । विश्वामित्र सर्वज्ञ थे, अतः उन्होंने विस्तारपूर्वक राम को बताया कि वहाँ कोई भी नहीं है । ८९ गौतम के ही समान गुणवती एवं भक्त उनकी पत्नी भी थी जिसका नाम अहिल्या था । वह तो ब्रह्मा की पुत्री थी जिसने अपने गुणों से सबको प्रसन्न किया । जब गौतम किसी कार्यवश कहीं दूर गए हुए थे उस समय इन्द्र गौतम का रूप धारण करके गौतम पत्नी के पास आया । ९० भोग-विलास के पश्चात् जैसे ही वह प्रसन्न होकर लौट रहा था वैसे ही गौतमी (अहिल्या) दूसरे गौतम को देखकर आश्चर्यचकित हो गई । अपने ही रूप को देखकर गौतम अत्यन्त क्रोधित हुए और इन्द्र से प्रश्न किया कि बताओ तुम कौन हो; अन्यथा अभी तुम्हें भस्म कर दूंगा । ९१ तब भयभीत होकर वह बोला कि हे ब्राह्मण! मैं इन्द्र

ब्राह्मण ! इन्द्र म हूँ भनेर डरले बिनती गन्याथ्या जसै ।
 गौतम्ले पनि रीसमा परि दिया यस्तो सराप् पो तसै ॥
 योनीमा अति लुब्ध आज भइछस् यत्रो बडो भै पनि ।
 तेरा येहि शरीरमा अब हुनन् हज्जार योनी भनी ॥९२॥
 दीया येति सराप् र इन्द्र पनि फेर आपना स्थलैमा गया ।
 पत्नीलाइ सराप् दियेर ऋषिले पत्थर् बनाई दिया ॥
 जन्तू कुछ नहुनन् यहाँ अब उपर पत्थर् भई तैं रह्यास् ।
 जैले श्रीरघुनाथ चरण धरिदिनन् तैले तैं मुक्तै भयास् ॥९३॥
 यस्तो सत्य सराप् पन्यो र पतिको ताहीं अहिल्या पनि ।
 पृथ्वीमा गिरि गैगइन् अचल एक पत्थर् स्वरूपकी बनी ॥
 पादस्पर्श ति खोज्दछिन् हजुरको पाप् मुक्त होला भनी ।
 तिन्लाई करुणा गरी हजुरले कुल्चीदिन्या हो पनी ॥९४॥
 यस्तो बिनति सुन्या जसै ति ऋषिका श्रीराम् तुरुन्तै गया ।
 देखता पत्थर एक ठुलो प्रभुजिले कुल्चीदिदा त्यो भया ॥
 सुन्दर् मूर्ति भई खड़ा भइगइन् ताहां अहिल्या पनि ।
 श्रीराम्चन्द्रजिले प्रणाम पनि गन्या ई ब्राह्मणी हुन् भनी ॥९५॥
 देखिन् श्री रघुनाथलाइ र तहां खूशी अहिल्या भइन् ।
 पूजा स्तुति गरेर राम्सित बिदा मागी पति थ्यै गइन् ॥

हूँ । इसे सुनकर क्रोधित गौतम ने भी शाप देदिया कि जब इतने महान् होकर भी तुम यौवन के वशीभूत हुए हो तो तुम्हारे इस शरीर में हजारों योनि-चिह्न उत्पन्न हो जायेंगे । ९२ इस प्रकार का शाप पाकर इन्द्र पुनः अपने लोक को चले गए । पत्नी अहिल्या को भी ऋषि ने शाप देकर पत्थर बना दिया । उन्होंने कहा कि यहाँ अब कोई जीव-जन्तु नहीं रहेगा; केवल तुम्हीं यहाँ अकेली पत्थर बनकर रहोगी । जब रघुनाथ अपने चरणों से तुम्हें स्पर्श करेंगे तभी तुम इस शाप से मुक्त होगी । ९३ पति के इस शाप से अहिल्या धरती पर गिर पड़ी और एक निश्चल पत्थर हो गई । वह शाप से मुक्ति पाने के लिए आपके चरणों का स्पर्श चाहती है, कृपा करके उसे अपने चरणों से स्पर्श कर दें । ९४ ऋषि की ऐसी विनती सुनकर श्रीराम तुरन्त वहाँ गये । रघुनाथ जी ने एक बड़ी शिला देखी और उसे अपने पाँव से स्पर्श किया । अहिल्या तुरन्त ही एक सुन्दर स्त्री बन कर खड़ी हो गई । ब्राह्मणी जान कर श्रीराम ने उसे प्रणाम

ताहाँ देखि चल्या र जल्दि रघुनाथ
तर्नाको प्रभुले जसै मन गन्या
ख्वामित्! ई दुइ पाउको अति असल्
पत्थर हो तपनी मनुष्य सरिको
तेस्तै पाठ यहाँ भयो पनि भन्या
डुङ्गाले पनि रूप् धन्यो यदि भन्या
तस्मात् पाउ पखालि वारि तिरमा
येती बात गरचौ भने त तिमि ता
यस्तो बित्ति सुनी तहाँ प्रभुजिले
माझीले जलले पखालि उहि जल्
यस्ता रित् सित नाउमा चढि सहज्
श्यामसुन्दर् रघुनाथ बहुत् खुशि हुँदै
विश्वामित्र ऋषी बहुत् खुशि हुँदै
आया यस् पुरिमा भनी जब सुन्या
पुग्या प्रश्न गन्या सबै कुशलको
देख्या सुन्दर राजकुमार् जनकले

गङ्गाजिका तीर् झन्या ।
माझी चरणमा पन्या ॥९६॥
धूलो जसै ता पन्यो ।
सुन्दर् स्वरूप धन्यो ॥
डुङ्गा स्वरूप् धर्दछन् ।
हाम्राजहान्मर्दछन् ॥९७॥
हाम्रा शिरोपर् धन्यौ ।
गंगाजिका पार् तरचौ ॥
पाऊ अगाडी दिया ।
आफनाशिरोपर्लिया ॥९८॥
गंगाजिका पार् गया ।
दाखिल् जनकपुर भया ॥
दूई कुमार साथ् गरी ।
दौड्याजनक तेस् घरी ॥९९॥
पाऊमहाँ शिर् धरी ।
पूज्या ति ईश्वर् सरी ॥

भी किया । ९५ श्रीरघुनाथ जी को देखकर अहिल्या प्रसन्न हुई और पूजा-स्तुति के पश्चात् राम से आज्ञा प्राप्त करके पति के पास गई । वहाँ से चल कर रघुनाथ जी शीघ्र ही गंगा जी के किनारे पर पहुँचे । जैसे ही प्रभु ने तैर कर पार होने के लिए सोचा वैसे ही मल्लाह उनके चरणों में आ पड़ा । ९६ हे स्वामी ! आपकी अति उत्तम चरण-रज लगते ही पत्थर भी मनुष्य-रूप धारण कर लेती है । उसी प्रकार यहाँ भी यदि मेरी नाव ने स्त्री का रूप धारण कर लिया तो हमारे समस्त परिवार नष्ट हो जायेंगे । ९८ इसलिए हे प्रभु ! पहले मुझे अपने चरणों को पखारने दें और वह पवित्र चरणामृत हमें माथे से लगाने दें । तभी हम आपको गंगा के पार उतरने देंगे । यह विनती सुनकर प्रभु ने अपने पाँव आगे बढ़ा दिये और मल्लाहों ने उनके चरण पखार कर जल को माथे में लगाया । ९८ इस प्रकार विधिपूर्वक नाव में चढ़कर श्रीराम सरलता से गंगा जी के पार हो गये । श्याम-स्वरूप वाले रघुनाथ जी जनकपुर आये । विश्वामित्र के दोनों राजकुमारों सहित जनकपुर की नगरी में आने का समाचार सुनकर राजा जनक तुरन्त ही प्रसन्न होकर दौड़ पड़े । ९९ वहाँ पहुँच कर चरणों में झुककर कुशल-समाचार ज्ञात

पक्का गर्न निमित्त फेर जनकले सोध्या ऋषिथ्यै पति ।
 जान्यां जान्न त चित्तले त भगवान् विष्णूइनै हुन् भनी ॥१००॥
 ब्रह्मान् ! पुत्र इ हुन् कउन् पुरुषका विस्तार् हवस् बेस् गरी ।
 क्लेशको लेश नराखि यस बखतमा मेरो लग्या मन् हरी ॥
 विश्वामित्रजिले सुन्या विनति यो राजा जनकको जसै ।
 यस्ता हुन् इ भनेर सब्ति ऋषिले विस्तार् बताया तसै ॥१०१॥
 हे राजन् ! दशरथजिका इ सुत हुन् नाम् राम लक्ष्मण भनी ।
 भन्छन् मानिसले गरी नसकिन्या गछन् पराक्रम पति ॥
 मारिचलाइ सुबाहुलाइ अरु ता को जित्त सकन्या थिया ।
 रामले मारिचलाइ फेकि सहजै सुबाहु मारीदिया ॥१०२॥
 पत्थर भै कति वर्षसम्म रहँदा गौतम् कि तारी थिइन् ।
 पाऊले तहिं कुल्चँदा उठि गइन् जस्ता कि तस्ती भइन् ॥
 याहाँ एक शिवको धनुष छ भनि यो सुनेर आया यहाँ ।
 देखाको मतलब् छ आज त यहाँ राखी रह्याछौ कहाँ ॥१०३॥
 चाँडो आज नजर् गराउ भनि यो विस्तार् गन्याथ्या जसै ।
 मन्त्रीलाइ हुकूम दिया जनकले लौ ल्याउ भन्त्या तसै ॥

किया । सुन्दर राजकुमारों को देखकर राजा जनक ने उनकी ईश्वर सद्गुण पूजा की । अपने मन में निश्चय करने के लिए जनकजी ने ऋषि से पूछा कि क्या भगवान् विष्णु यही हैं । १०० ब्रह्मान् ! ये किन महापुरुष के पुत्र हैं, विस्तारपूर्वक कहने की कृपा करें । इस समय मेरा मन क्लेश-रहित हरि के ध्यान में लगा हुआ है । विश्वामित्र ने राजा जनक की यह विनती सुनते ही श्रीराम के विषय में सविस्तार वर्णन किया । १०१ हे राजन् ! ये दशरथ जी के पुत्र राम तथा लक्ष्मण हैं । लोग कहते हैं कि ये अभूतपूर्व पराक्रमी हैं, जो मनुष्य के लिए सम्भव नहीं । मारीच और सुबाहु को दूसरा कौन पराजित कर सकता था । राम ने ही मारीच को पटक कर सुबाहु का बंध किया । १०२ इनके चरणों का ही प्रताप इतना है कि कितने ही वर्षों से शिला हुई रूप प्राप्त हो गया । यहाँ एक शिव-धनुष है, ऐसा सुनकर उसे देखने की आकांक्षा से यहाँ आये हुए हैं; सो कृपया उसे दिखाने का कष्ट करें । १०३ ऐसा आग्रह सुनकर मन्त्री को धनुष लाने की आज्ञा जनक ने दी । इसी बीच जनक ने ऋषि से कहा कि मैं अधिक क्या

यै बीचमा ऋषिथ्यै भन्या जनकले रामले उचालून् धनु ।
सीता छोरि म दिन्छु रामकत गरुन् बीहा बहुत् क्या भनूँ ॥ १०४ ॥
साँचा बाणि सुन्या र सोहि रितका बात्चित् गन्याथ्या जसै ।
पाँच हज्जार विरले उचालि बलले ल्याया धनुषै तसै ॥
ताहाँ श्री रघुनाथ उठेर तजिकै सोही धनुथ्यै गया ।
वाम् हात्मा सहजै उचालि धनु त्यो रामले तलीदाभया ॥ १०५ ॥
ताँदो जल्दि चढाइ खँचनुभयो ताहाँ धनुषकै जसै ।
दूई टूक भई गिरचो उ धनु ता खूशी भया सब तसै ॥
हर्षहर्ष भयो तसै बखतमा सारा जनकपुर भरी ।
आदर् खुप् प्रभुको गन्या जनकले आलिगनादी गरी ॥ १०६ ॥
सीताजी पनि रामका शिर-उपर माला कनकको धरी ।
छमछम पाउ गरी फिरिन् घरमहाँ मंगल् भयो तेस् धरी ॥
मालिकहुन् दशरथ खबर दिनुपन्यो ती छन् अयोध्यामहाँ ।
जाउन् पत्र लिएर मानिसहरू चाँडो तिआउन् यहाँ ॥ १०७ ॥
यस्तो बित्ति जनकजिले पनि गन्या लेखेर विस्तार दिया ।
विस्तार पत्र लियेर दुतहरु पनी जल्दी अयोध्या गया ॥

निवेदन करूँ । राम शिवधनुष को उठा लें तो मैं अपनी पुत्री सीता का विवाह राम से कर दूँ । १०४ ज्योंही इन सत्य वचनों को सुना और यह बातचीत हुई । जैसे ही पाँच हजार वीरों ने बल लगा कर धनुष लाकर रक्खा । उसी समय श्रीरघुनाथ जी उठकर उस धनुष के पास आये । बायें हाथ से राम ने सहज ही धनुष को उठा लिया । १०५ बाण चढ़ा कर जैसे ही धनुष को खींचा, वह दो टुकड़े होकर रह गया । यह देख कर सभी अत्यन्त हर्षित हुए । उस समय सम्पूर्ण जनकपुर में हर्षोल्लास छा गया । प्रभु को आलिगन में लेकर जनक जी ने उनका बड़ा ही आदर सत्कार किया । १०६ सीता जी ने भी राम के गले में स्वर्णमाला पहनाई और छम-छम करती हुई लौट गई । दरबार में उत्सव हुआ । उनके स्वामी तो दशरथ जी हैं अतः उन्हें अयोध्या में यह शुभ समाचार भेजना चाहिए । पत्र लेकर तुरन्त जाओ और यह शुभसन्देश शीघ्र वहाँ पहुँचाओ, जिससे वह यहाँ शीघ्र आ जायें । १०७ इस प्रकार जनक जी ने यह विनती की और सविस्तार पत्र लिखकर दिया । दूत लोग भी पत्र लेकर तुरन्त अयोध्या चले गये । राजा दशरथ पत्र को सुनकर

यो विस्तार सुन्या जसै नृपतिले आनन्दमा ती पन्या ।
 सब्ले जानु पन्यो जनकपुरमहाँ भन्याहुकूम योगन्या ॥ १०८ ॥
 जम्मा लशकर भै गयो क्षणमहाँ जल्दी जनकपुर पुग्यो ।
 क्या वर्णनभिडको गरूँ त्यस बखत् खाली अयोध्या भयो ॥
 यस्ता रीत्सित सब गया जतिथिया सेना जनकपुर महाँ ।
 दाखिल् भो दशरथजिको हुकुमले हर्षे बढ्यो खुप् तहाँ ॥ १०९ ॥
 ताहाँ श्री दशरथजिको जनकले आदर् बहूतै गरचा ।
 लक्ष्मणले सँग राम् पनी तहि पिता-जीका चरणमा पन्या ॥
 बस्नालाई हबेलि सुन्दर जनक-जीले खटाया जहाँ ।
 खूशी भै दशरथ पनी गइ बस्या तेसै हबेली महाँ ॥ ११० ॥
 सुन्दर् लग्न खटन् गन्या जनकले मंगल् सहरमा चल्या ।
 नाच् कीर्तन् सितका प्रकाशकन हुन्या रात्मा चिराक् खुप् बल्या ॥
 जो मण्डप छ विवाहको तेस उपर झुम्का हिराका झुल्या ।
 मूगा मोति जुहार जनकपुरमहाँ घरघर सबैका झुल्या ॥ १११ ॥
 यस्तै रीत् गरि भो विवाह विधिले चारै जना भाइको ।
 हर्षेले परिपूर्ण मन् हुन गयो सीताजिकी माइको ॥

आनन्दमग्न हो गये और सबको जनकपुर चलने की आज्ञा दी । १०८
 दशरथ जी की आज्ञा पाकर क्षण भर में ही सेना की सेना एकत्र हो
 गई और जनकपुर चल पड़ी । भीड़ का वर्णन तो किस प्रकार किया
 जाये! यही कहना पर्याप्त होगा कि पूरी अयोध्या ही खाली हो गई थी ।
 इस प्रकार अपने सब दल सहित दशरथ जी जनकपुर पहुँचे और दशरथ जी
 की आज्ञा से सभी लोग हर्षित होकर अन्तःपुर में जा कर विराजमान हुए । १०९
 वहाँ जनक जी ने श्री दशरथ जी का भव्य स्वागत-सत्कार किया । लक्ष्मण
 के साथ राम ने भी पिता के चरणों में झुककर प्रणाम किया । श्री
 दशरथ जी के ठहरने के लिए जनक जी ने बहुत ही सुन्दर महल का
 प्रबन्ध करवाया, जहाँ उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक निवास किया । ११०
 जनक जी ने उत्तम मुहूर्त निकलवाया । नगर में मंगलगान, उत्सव,
 कीर्तन तथा नृत्य आदि का सुन्दर आयोजन हुआ । रात्रि में दीपक
 जलाकर सजाया गया । विवाह-मण्डप में हीरे-मोती-मूंगा तथा जवाहरों
 की झालरें लटकाई गईं । नगर के घरों-घरों को मालाओं से सजाया
 गया । १११ इस प्रकार चारों भाइयों का विधिवत विवाह सम्पन्न

राम लक्ष्मण दुइलाइ ता जनकले आफ्ना ति छोरी दिया ।
 भाईका त भरतजिलाइ र ति वीर शत्रुघ्नलाई दिया॥११२॥
 सीता पति भइन् रमापतिकि ता लक्ष्मणजिकी उमिला ।
 पत्नी हुन् श्रुतकीर्ति ता भरतकी शत्रुघ्नकी माण्डवी ॥
 जस्तै आफु थिया अनन्त गुणका चौधे भुवन्का धनी ।
 अभ्यन्तर् मनले विचार गरदा तस्तै ति पत्नी पनि॥११३॥
 विश्वामित्र वशिष्ठ दूइ ऋषिथ्यै यस्ती सिता हुन् भनी ।
 उत्पत्ती अधिको सबै जनकले विस्तार् बताया पनि ॥
 जान्थ्यौ भूमि पवित्र गर्न भनि एक कवै यज्ञ गर्दामहाँ ।
 जोत्तामा त सिताजि निस्कन गइन् आश्चर्यमान्यां तहाँ॥११४॥
 पाल्यां छोरि भनेर नाम् पनि असल् सीताजि राखीदियां ।
 गर्थिन् बालकमा अनेक तरहका लीला म खूशी थियां ॥
 राम नाम्ले दशरथजिका सुत भई खेलछन् अयोध्यामहाँ ।
 तिम्री पुत्रि सिता उनै प्रभुजिकी माया ति आइन् यहाँ॥११५॥
 यो लीला छ बुझी सिताकन तिनै राम्लाइ दीया भनी ।
 नारदजी उठि गै गया, उहि सुनी याद् भो मलाई पनि ॥

कर सीता जी की माता का मन हर्ष से भर गया । राम और लक्ष्मण को तो जनक ने अपनी ही पुत्रियों को विवाहा और अपनी भतीजियों को वीर भरत तथा शत्रुघ्न को समर्पित किया । ११२ सीता राम की, उमिला लक्ष्मण की, माण्डवी भरत की तथा श्रुतिकीर्ति शत्रुघ्न की पत्नी हुई । जैसे वे स्वयं अनन्त गुणों से युक्त चौदह भुवन के स्वामी थे उसी प्रकार अन्तर मन से विचार करने से पत्नियाँ भी वैसी ही थीं । ११३ ऋषि विश्वामित्र और वशिष्ठ दोनों को सीता जी की उत्पत्ति के विषय में सविस्तार बताया गया । एक यज्ञ हेतु भूमि को पवित्र करने के लिए जोतते समय सीता जी प्रकट हुईं, जिसे देख सभी आश्चर्य-चकित रह गये । ११४ पुत्री-रूप में ग्रहण करके इन्हें पाला और नाम भी सीता रख दिया । बाल्यावस्था में ये अनेक प्रकार की लीलाएँ करती थीं जिसे देख कर मैं बड़ा प्रसन्न होता था । उधर राम दशरथ-पुत्र बनकर अयोध्या में खेलते थे । आपकी पुत्रवधू सीता जो यहाँ आ गई यह उसी प्रभु की शक्ति है । ११५ सीता की इन सब लीलाओं को समझ कर ही राम से उसका विवाह कर दिया । ऐसा [एक दिन] कह कर नारद जी उठकर चले गए । यही सुनकर मुझे भी स्मरण हुआ और सोचा कि किस

कुन् पाठ्ले अब रामलाइ म सिता पाहूँ विचार्यो गरचाँ ।
 थीयो यो शिवको धनुष यहि यसै- मा यो प्रतिज्ञा गरचाँ ॥ ११६ ॥
 ताँदो यस धनुको चढाउन जउन् वीरले त सकला यहाँ ।
 सीता छोरि दिन्याछु तेस्कन फिका होवैन यस बात्तुमाँ ॥
 जानुन् सब विरले भनीकन गन्याँ यस्तो प्रतिज्ञा जसै ।
 यो सूनीकन देशका विरहरू आया तुरुन्तै तसै ॥ ११७ ॥
 को सक्थ्यो धनु त्यो उठाउन बिना श्रीराम अगाडी सरी ।
 हिक्मत् हारि सबै घरै फिरिगया दर्शन धनुको गरी ॥
 रामले पूर्ण गराइबक्सनुभयो मेरो प्रतिज्ञा पनि ।
 यो चीन्ह्या पनि सब कृपा चरणले गर्दा भयाको भनी ॥ ११८ ॥
 विश्वामित्रजिथ्यै पनि जनकले विन्ती अगाडी गरी ।
 सीतानाथ रघुनाथको स्तुति गन्या आनन्दमा ती परी ॥
 दाईजो सय कोटि दौलत सहित बेस् बेस् अयुत् रथ दिया ।
 घोडा ता सय लाख दिया छ सय ता खुप मत्तहात्ती थिया ॥ ११९ ॥
 पैदल लश्कर एक लाख र सय तीन कोटी दियाथ्या जसै ।
 पूजा फेरि वशिष्ठको पनि गरचा भारी डबल्ले तसै ॥
 पूजा ताहि भरतजिको पनि भयो लक्ष्मणहरूको पनि ।
 इच्छा भो रघुनाथको अब फिरौ जाऊँ अयोध्या भनी ॥ १२० ॥

विधि से अब मैं राम का सम्बन्ध सीता से करूँ । इसी कारण शिव के इस धनुष की ऐसी [कठिन] प्रतिज्ञा रखी । ११६ जो वीर इस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा सकेगा उसी के साथ मैं अपनी पुत्री सीता का विवाह कर दूँगा । मेरे इस वचन में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आयेगा । जनक की इस प्रतिज्ञा को सुनकर देश-विदेश के वीर वहाँ आए । ११७ श्रीराम के अतिरिक्त और कौन आगे बढ़कर उस धनुष को उठा सकता था । सभी वीर अपना साहस खोकर शिव धनुष का केवल दर्शन करके ही अपने-अपने देश लौट गए । मेरी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने की कृपा केवल राम ने की । यह भी जान लिया कि ये सब इन्हीं चरणों की कृपा से हुआ है । ११८ जनक ने आगे बढ़कर विश्वामित्र से विनती की, आनन्दमग्न होकर सीतापति श्रीरघुनाथ की स्तुति की, और दहेज में एक पद्म धन सहित दस-हजार उत्तम रथ, एक करोड़ घोड़े और छः सौ मत्त हाथी दिए । ११९ एक लाख पैदल सेना तथा तीन सौ सेविकाएँ देकर पुनः वशिष्ठ एवं भरत तथा लक्ष्मण की भी भव्य पूजा की ।

अहल्या सिरयि हिश आस शोलु दिवान ।
 तमिस वीरन वुछित आस्य प्रान नेरान ॥
 वंछ कामुन्य वुतल येलि र्यन्दुराजस ।
 पकुनि लोग रात्रि त्रिविथ रेश्य मकानस ॥
 वननि लोग किथु पाठ्य अत्रु रेश्य मकानस ।
 वोन्यहे बोझ्यम अमा मारम मे पानस ॥
 औनुन दीवा दोपुन तस कौकर वीह लाग ।
 ब्रुह दि बांग अरदरातस तस रेश्यस जाग ॥ १० ॥

दिञ्चुन तम्य बांग अदु र्योश गव बेदार ।
 वनुनि लोग न्यन्दुर आयम गोस न हुश्यार ॥
 तुलुन गंडवा अथस क्यथ नंदयि प्यठ द्राव ।
 करनि लोग श्रान नंदयि मा बोझुन आव ॥
 दोपुस तमि रेश्य वायो सुल छि श्रानस ।
 अमा वनुह्य नु पाप मा खसि मे पानस ॥
 कौह्य छल येन्दुराजन कौकर वीह लोग ।
 पगाह लदुहम मे प्यठ शापुक यिथय बोग ॥

वहाँ पहुँचकर उसने सोचा कि मकान के भीतर कैसे जाया जाय, क्योंकि यदि ऋषि ने देख लिया तो उसको (शाप देकर) मार डालेगा । (इस पर) उसने एक देवता को बुलाया और उसे कुक्कुट (मुर्गे) का रूप धारण करने को कहा (और आदेश दिया कि) तू अर्द्धरात्रि में (जोर से) बांग दे तथा उस ऋषि (गौतम) को (नींद से) जगा ॥ १० ॥ (इस पर) उस (देवता रूपी कुक्कुट) ने बांग दी तथा वह ऋषि बेदार हो गया । वह (ऋषि कुक्कुट की बांग सुनकर) कहने लगा— (गहरी) नींद के कारण मैं जाग न सका । वह (तुरन्त) हाथ में लोटा लेकर नदी की ओर (स्नान-ध्यान करने के लिए) चल पड़ा । जब वह स्नान करने लगा तो नदी ने सब जानकर उससे कहा—हे ऋषिदेव (तेरे) स्नान करने में अभी देर है (तू आज इतनी जल्दी क्यों आया ?) तुझसे मैं ऐसा कभी नहीं कहती, किन्तु (अनर्थ न हो जाय और) मुझे पाप न लगे इसलिए कह रही हूँ । तेरे साथ इन्द्र ने कुक्कुट रूप धारण कर छल किया है; कहीं तुम बाद में मुझे शाप न दो (इसलिए सब कुछ कह रही हूँ) । (यह सुनकर) ऋषि वापिस मुड़ा और अपने घर के पास पहुँचा और उसने देखा कि इन्द्र (उसके घर में घुसने की)

पकन गव र्योश तु वोतुय पनुनि शाये ।
 वुछुन यन्दुराजु करान आयि ग्राये ॥ १५ ॥
 द्युतुस रेश्य शाप येमि पुछ्य योत त्रु आखुय ।
 करय सूर वाकु सूतिन जन नु ज्ञाखुय ॥
 अहल्यायि शाप द्युतुनय बरथाहन ।
 सपुन शिला योताम तिम जनम दारन ॥
 यिनय जनमस अमी पुछ्य रामुअवतार ।
 चुह बेह यथ शायि कर समुयस नमस्कार ॥
 समय अन्थस गोवुय मा अहल्याये ।
 ज्वरनन शेर दोरुय वेश्नुमाये ॥
 लजिस पादन दिने मीठ्य येछि माये ।
 लजिस तोता करने जायि जाये ॥ २० ॥
 दितुनस पादयि गन्द दोपनस मे मो रोश ।
 त्रु रोजतम वोन्य साहिबो लागयो पोश ॥ २१ ॥

भजन

लागयो पोश शेरे ।
 रामु ज्वन्दुरह चानि वेरे ॥

कुचेष्टा कर रहा है ॥ १५ ॥ ऋषि ने उसको (इन्द्र को) शाप दिया कि जिस उद्देश्य से तुम आये (उस कुत्सित पाप के कारण) शाप से तुम्हें ऐसे भस्म कर डालूंगा मानो तुम कभी जन्मे ही न थे । अहल्या को भर्ता (गौतम) ने यह शाप दिया कि तू तब तक शिला बन जा जब तक वे (राम, लक्ष्मण आदि) जन्म नहीं लेते । वे तुम्हारे लिए ही अवतार धारण करेंगे । तू इसी स्थान पर (शिला-रूप में) बैठ और उस समय को नमस्कार (प्रतीक्षा) कर । (लगता है कि अब) अहल्या के समय (उसकी प्रतीक्षा) का अन्त हो गया है, तभी प्रभु के चरणों में वह प्रत्यक्ष हो गई (उन्हें अपने ऊपर धारण कर लिया) । वह (रामचन्द्रजी के) चरणों को भाव-विभोर होकर चूमने लगी तथा उनके अंगप्रत्यंग की स्तुति करने लगी ॥ २० ॥ उसने चरणामृत पीकर (रामचन्द्रजी से कहा) हे भगवन् ! अब मुझ से रुष्ट न हों । हे मेरे साहिब ! मेरा उद्धार कीजिए, मैं आप पर पुष्प चढ़ाती हूँ ॥ २१ ॥

आपके शीश पर पुष्प चढ़ाऊँ । हे रामचन्द्रजी ! (ये पुष्प हैं)

पाँछ बूत छिय जे मने ।
वातान छुख हनि हने ॥
मनु मन्जु आख मे वने ।
रामु जैन्दुरुह चानि वेरे ॥ १ ॥

अज्ञान छुम मे मने ।
काम क्रूद लूब गने ॥
द्यान चीन मनि सने ।
रामु जैन्दुरुह चानि वेरे ॥ २ ॥

शामु रूपु रामु जुवुह ।
मनशि रूपु जनम छुवुह ॥
बूमि बार आख कासुने ।
रामु जैन्दुरुह चानि वेरे ॥ ३ ॥

शाप द्युत मे बरथाहन ।
यैन्दुराजुह चाव करन ॥
पापु सुत्य गयसय शरन ।
रामु जैन्दुरुह चानि वेरे ॥ ४ ॥

शाप द्युतुन यैन्दुराजस ।
दीवन हुन्दिस राजस ॥
लूब गौय जे कामु वेरे ।
रामु जैन्दुरुह चानि वेरे ॥ ५ ॥

बस आपके लिए । पंचभूत आप में समाये हुए हैं और आप सब में समाये हुए हैं । मैंने भी आपको अपने मन में पहचान लिया है । हे रामचन्द्रजी ! (ये पुष्प हैं) बस आपके लिए । १ मेरे मन में अज्ञान है । काम, क्रोध और लोभ इसमें सने हुए हैं । बस, अब यह (मन) आपके ध्यान में मग्न हो रहा है । हे रामचन्द्रजी ! (ये पुष्प हैं) बस आपके लिए । २ हे (मेरे) श्याम-रूप राम ! आप मनुष्य रूप में जन्म लेकर भूमि को भार-मुक्त करने आए हैं । हे रामचन्द्रजी ! (ये पुष्प हैं) बस आपके लिए । ३ मेरे भर्ता ने मुझे शाप दिया (जिस पर) इन्द्र प्रसन्न हो गया था । (अब) मैं पापिन आपकी शरण में आगई हूँ । हे रामचन्द्रजी ! (ये पुष्प हैं) बस आपके लिए । ४ (मेरे भर्ता ने) इन्द्र को भी शाप दिया जो सभी देवताओं का राजा है । उसे काम का लोभ हुआ था । हे रामचन्द्रजी ! (ये पुष्प हैं) बस आपके लिए । ५

येमि लूबु छाख मकानस ।
 तिम सास गयी जे पानस ॥
 वरथन पनुनि वेरे ।
 रामु ज़न्दुरुह चानि वेरे ॥ ६ ॥

सास न्यतुर तस बन्याव ।
 दीवन प्यठ सु नन्याव ॥
 दयि गत वुछो नेरे ।
 रामु ज़न्दुरुह चानि वेरे ॥ ७ ॥

न्यतन ज़जुम गटु ।
 हावतम पनुनि वतु ॥
 शाप ज़ोलमु पापु वेरे ।
 रामु ज़न्दुरुह चानि वेरे ॥ ८ ॥

ब्रह्मा चानि गंजुय ।
 ज्यवन करुनि संजुय ॥
 व्येणु रुप कश्नु वेरे ।
 रामु ज़न्दुरुह चानि वेरे ॥ ९ ॥

शिव रुप कर्यथ जाये ।
 जय कार अहल्याये ॥
 खारथन वैणुमाये ।
 रामु ज़न्दुरुह चानि वेरे ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! जिस लोभ से तुम ऋषि के मकान में प्रविष्ट हुए थे, तुम्हारे शरीर पर (वही) हजार नेत्र (भग) बन गए । हे रामचन्द्रजी ! (ये पुष्प हैं) बस आपके लिए । ६ उसके हजार नेत्र बन गए । (स्पष्ट) देव गति देखिए सभी देवताओं पर यह बात प्रकट हो गई । हे रामचन्द्रजी ! (ये पुष्प हैं) बस आपके लिए । ७ मेरी आँखों से (अब) अन्धकार दूर हो गया । अब आप मुझे अपनी राह दिखाएँ । मैं पापिन शाप-मुक्त हो गई । हे रामचन्द्रजी ! (ये पुष्प हैं) बस आपके लिए । ८ ब्रह्मा ने (भी) आपकी गति को जानने के लिए जन्म लिया । आप ही विष्णु हैं और कृष्ण के रूप में भी आप ही हैं । हे रामचन्द्रजी ! (ये पुष्प हैं) बस आपके लिए । ९ अहल्या आपकी माया को जयजयकार करती है । उसका सुन्दर रूप (शारीरिक सौन्दर्य) व्यर्थ कर (गौण करके)

द्युतुथम मे दरशुनुय ।
 अमर्यथु वरशुनुय ॥
 कासतम जूनि ग्रुहनुय ।
 रामु ज़न्दुरुह चानि वेरे ॥ ११ ॥

अन्थ चोन कुस जाने ।
 क्याह ओसुम मे लाने ॥
 बूमि बार कासुवने ।
 रामु ज़न्दुरुह चानि वेरे ॥ १२ ॥

जयकार गोतम रेशिस ।
 अहल्यायि हंन्दिस अंशिस ॥
 प्रकाशि चानि वेरे ।
 रामु ज़न्दुरुह चानि वेरे ॥ १३ ॥

सीतायि हुन्द जनम तु सौयमवर

जनख राजस दपान कूरा छि जामुञ्ज ।
 सौमा लंख्यमी छि तंम्य सुन्द गरु आमुञ्ज ॥
 स्यठाह सनतानु पुछ्य आवारु ओसुय ।
 दयन दर्ययावु प्यठु तस कूफ कोसुय ॥

आपने उसका उद्धार किया । हे रामचन्द्रजी ! (ये पुष्प हैं) बस आपके लिए । १० आपने मुझे दर्शन देकर मुझ (पापिन) पर अमृत बरसाया । अब मुझ चाँद पर लगा हुआ ग्रहण दूर कर दीजिए । हे रामचन्द्रजी ! (ये पुष्प हैं) बस आपके लिए । ११ आपके अन्त को कौन जान पाया है । मेरे भाग्य में न जाने क्या लिखा था । हे भूमि को भारमुक्त करने वाले ! हे रामचन्द्रजी ! (ये पुष्प हैं) बस आपके लिए । १२ गौतम ऋषि की जयजयकार हो । अहल्या के आँसू आपके प्रकाश के लिए हैं । हे रामचन्द्रजी ! (ये पुष्प हैं) बस आपके लिए । १३

सीता का जन्म और स्वयंवर

कहते हैं राजा जनक के एक लड़की उत्पन्न हुई है, मानो (स्वयं) लक्ष्मी उसके घर में आ गई है । वह (राजा) सन्तान-अभाव के कारण बहुत उद्विग्न रहा करता था पर अब भगवान् ने दरिया पर उसके अभिशापों को दूर कर दिया । उसने कहा कि मैं दरिया पर एक यज्ञ

दोपुन करु जग नदि प्यठ द्राव पानु ।
 खनिन म्यत्र मैत्रि तलु तंम्य लोव खजानु ॥
 स्यठाह सन्तानु बापथ लोल तस ओस ।
 सन्दूकस वयथ लंबुन मैत्रि तलु खोश गोस ॥
 दयोगत दीवियाह ज़न्द्रमु हिश आस ।
 सिरियि सुंदि खौतु प्रवुह वावान स्यठा आस ॥ ५ ॥

स्यठा आशत्रर यि कोर तंम्य ह्योर खारुन ।
 छ क्या तिमु डानु यिमु यिछु विगनि मारन ॥
 करुख टीका यि कस तामत छि ज़ामुत्र ।
 छुनिक कौलि योत छि पानिस सुत्य आमुत्र ॥
 वुछिख दुरदानु डीठुक जन सतु मांस ।
 न्योठन दोदु दामु खातरु जुह दिवन आस ॥
 गंमुत्र वरुह जन पैमुत्र आस आसमानु ।
 हरान आस मोख्तु ओश जन दानु दानु ॥
 जिगर हंन्दुरिथ वुछन ज़न्दुरन तु तारन ।
 वदान आस टाछि आस माजि छारन ॥ १० ॥

रचाऊंगा और स्वयं (यज्ञ का संपादन करने हेतु) निकल पड़ा । उसने मिट्टी खोदी (खनन किया) और मिट्टी के नीचे उसे एक खजाना मिल गया । सन्तान-प्राप्ति के लिए वह अत्यन्त विकल था । (मिट्टी) खोदते-खोदते उसे एक सन्दूक (पेटी) मिला जिसे देख वह खुश हो गया । दैवगति से उसमें देवी-तुल्य एक कन्या निकली । वह देवी चन्द्रमा के समान थी तथा सूर्य से अधिक आलोक विकीर्ण कर रही थी ॥ ५ ॥ उसे देखकर राजा को बहुत आश्चर्य हुआ और वह उसे ऊपर ले आया । (राजा कहने लगा,) वे डाइन-सदृश माताएँ भी क्या हैं जो ऐसी सुन्दर देव-बालाओं को मार देती हैं (परित्याग कर देती हैं) । सभी (उपस्थित-जन) टीका-टिप्पणी करने लगे कि यह कन्या किसी के यहाँ जन्मी होगी और उसे (बाद में) नदी में फेंक दिया गया होगा तथा बाद में पानी के प्रवाह के साथ यहाँ पहुँच गई होगी । सभी ने उस रूपसी को देखा और सभी को लगा जैसे वह सात मास की कन्या हो । वह दूध पीने के लिए अपने अँगूठे को धीरे-धीरे चूस रही थी । वह कुम्हला गई थी जैसे आसमान से गिरी हुई हो (असहाय हो, कोई भी अपना न हो) वह अपनी आँखों से मुक्ता (मोती) के दानों की तरह आँसू बहा रही थी ।

दपन क्याह सना बबस गवना कनन म्योन ।
 अबस जानुन हज्जर गवना बबस म्योन ॥
 कमिस वनु बो तमिस अछ कोनु फोरन ।
 मरस त क्याह करस छनु वांस सोरन ॥
 यिछन कोरेन छि कम बब मांज लागन ।
 यिमन पतु वाव तिमन अदु काव जागन ॥
 जनख राजन दोपुस बब छुस बो चोनय ।
 दयस निशि लेखुनावय रुत जे लोनय ॥
 ति मा आंसुस खबर यथ गंज बु वाता ।
 यिहय मांसूम सारेन मा छि माता ॥ १५ ॥

नियन गरु लोलु सुतिन तम्य सौन्दरमाल ।
 रछिन तिथु यिथु रछन छि अछ अन्दर लाल ॥
 कमाना अख थोवन तम्य तथ बचन यी ।
 कड्यस युस कश तु शेरस लागि सु ही ॥

वह जिगर-सोख्ता (आकाश में) चाँद व तारों को देख रही थी। वह (फूट-फूटकर) रो रही थी मानो अपनी प्यारी माँ को ढूँढ़ रही हो, ॥१०॥ और जैसे कह रही हो—क्या मेरे माँ-बाप के कानों में मेरा आर्त्तनाद नहीं पड़ा था (जो उन्होंने मुझे इस तरह त्याग दिया), उनको मुझ पर थोड़ी-सी भी दया क्यों न आई, अब मैं अपना दुखड़ा किससे कहूँ? क्या उनकी आँख नहीं फड़कती (उनको मेरा ध्यान नहीं आता)। मैं मर जाना चाहती हूँ, पर क्या करूँ आयु घटती भी तो नहीं है। मुझ जैसी भाग्यहीना को भला (कौन अपनायेगा), कौन माता-पिता बन सकता है। सच है, जो (पहले से ही) दरिद्र होते हैं उन पर कौवे भी झपट पड़ते हैं। (कन्या की ये मर्मस्पर्शी बातें सुनकर) राजा जनक बोले—(तू अधीर न हो कन्या!) मैं तेरा पिता हूँ। तेरे लिए मैं स्वयं भगवान् से सौभाग्य लिखाकर लाऊँगा। पर उस (राजा जनक) को क्या खबर थी कि वास्तव में वह मांसूम कन्या सभी की माता है ॥ १५ ॥ राजा उस सुन्दर कन्या को प्रेमपूर्वक घर पर ले आये और उसका इस तरह पालन-पोषण करने लगे जैसे आँखों की पुतली (हो)। (कन्या जब बड़ी हुई तो उसका विवाह करने के लिए) राजा ने एक वचन रखा कि (इस) कमान से जो तीर फेंकेगा उसके शीर्ष को वह सुशोभित करेगी। शिवजी द्वारा प्रदत्त इस कमान की यह विशेषता है कि जो इसे खीचेगा और तीर चलायेगा उसे ही मैं कन्या सौपूँगा। अगरचे अनेक बलवीरों

कमान दित्रुमुत्र शिवन तथ यी छु तदवीर ।
 दियस तस कश कडिथ युस त्रावि तथ तीर ॥
 लोमुख योदवय बलुवीरव स्यठाह तथ ।
 अछिर वाला मुले करनख नु हरकथ ॥
 यिवान छि वीर तथ सुबहन तु शामन ।
 रिवां नेरां दिवान तिम चाक जामन ॥ २० ॥

तिमय बलुवीर यिम फौकु सुत्य तुलन बाल ।
 अमानत केह न हरकत अख अछिर वाल ॥
 मनस कथ थाव तस प्यव नाव सीता ।
 बु छुस ज्ञानन जे सुत्य छस करमु लीखा ॥
 पकान गयि वात्य तथ शहरस अन्दर जायि ।
 खबर राजस करुख तिम ह्यथ कमान द्रायि ॥
 लमान कम आस्य तथ वीरस शुराह सास ।
 दयोगत वुछ रेशिस बोझनु क्याह आस ॥
 लमान कम आस्य तथ बोझ सासुबंद्य वीर ।
 तुजिन थोद रामुचन्द्रन त्रवनस तीर ॥ २५ ॥
 मछन हुन्द कश कडिथ त्युथ तीर त्रवुन ।
 सदाह कौरनस समय यंत्र शोरु नोवुन ॥

ने उस (कमान) को खींचा किन्तु उस कमान ने पलक के बाल बराबर भी (तिल भर भी) हरकत न की। सुबह-शाम वीर आते-जाते रहे किन्तु सभी अपना-सा मुंह लेकर वस्त्रों को चाक करते हुये निकलते गये ॥ २० ॥ वे बलवीर जो फूँक से बड़े-बड़े पर्वत उठा सकते थे, वे उस कमान को पलक के बाल बराबर भी हिला न सके। (राजा मन में सोचने लगे) लगता है, मेरी कन्या सीता का कर्म-लेख अवश्य किसी विशिष्ट व्यक्ति के साथ बँधा हुआ है। इधर तीनों, रामचन्द्र जी, लक्ष्मणजी और विश्वामित्र चलते-चलते उसी शहर की ओर निकल पड़े और उसके अन्दर दाखिल हुये। राजा को खबर भेजी गई और वे कमान लेकर बाहर आये। उस कमान को सोलह सहस्र वीर खींच रहे थे। दैवगति देखिए कि महर्षि विश्वामित्र को क्या सूझी जो वे उन रामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी को वहाँ ले आये। मुनिए, उस कमान को सहस्रों वीर खींचकर ला रहे थे। रामचन्द्रजी ने उसे ऊपर उठा लिया और तीर छोड़ दिया ॥ २५ ॥

बढ़ती हुयी जनसंख्या तथा उद्योग धंधों की
मांग को पूरा करने के लिए

अधिक से अधिक वृक्ष लगाइये ।

वन विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित ।

ग ३८४१

प्रदेश— उत्तम स्वास्थ्य की ओर अग्रसर

चिकित्सा, स्वास्थ्य व परिवार नियोजन सेवाओं में उत्तरोत्तर वृद्धि

- प्रति व्यक्ति जीवन आशंसा से बढ़ोतरी तथा मृत्यु दर में कमी हुई है ।
- ● चिकित्सा शिक्षा हेतु प्रदेश में ९ मेडिकल कालेज कार्यरत हैं ।
- ● ● पैरामेडिकल कार्यकर्ता-नर्स, प्रयोगशाला सहायक, ऐक्सरे टेक्निशियन, एग्जिलरी नर्स मिडवाइफ, हेल्थ विजिटर, परिवार नियोजन कार्यकर्ता, स्वास्थ्य निरीक्षक तथा अन्य विभिन्न श्रेणी के कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी है ।
- ● ● ● संक्रामक रोगों की रोकथाम की गयी है ।
- ● ● ● ● अनेक रोग जैसे चेचक, मलेरिया, क्षय, कुष्ठ, रोहा आदि के रोक-थाम व नियंत्रण के लिये राष्ट्रीय कार्यक्रम चलाये गये हैं ।
- ● ● ● ● परिवार कल्याण कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में ८७५ परिवार कल्याण नियोजन केन्द्र एवं प्रत्येक से सम्बन्धित ८ उपकेन्द्र तथा नगरों में १५४ केन्द्र कार्यरत हैं । इसके अतिरिक्त लूप निवेशन तथा नसबन्दी हेतु सबल सेवा इकाइयाँ भी कार्य कर रही हैं ।

उपलब्ध सेवाओं से भरपूर लाभ उठाकर स्वयं अपनी व अपने परिवार के सभी सदस्यों की स्वास्थ्य रक्षा कीजिये ।

ग ९१६१ प्रसारित: स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो चिकित्सा एवं स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन-निदेशालय, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

समृद्धि की जिम्मेदारी सब पर

सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्ति के लिए

आवश्यक है कि

भूमि-व्यवस्था में समुचित सुधार हो
उत्तर-प्रदेश सरकार ने इस दिशा में
जमीन्दारी-विनाश अधिनियम पारित कर
पहला महत्वपूर्ण कदम उठाया था

और अब

उक्त अधिनियम में उपयुक्त संशोधन कर
मालगुजारी की दरों की विषमताएँ समाप्त की
जा रही हैं

साथ ही

प्रत्येक परिवार के लिए जोत की अधिकतम सीमाएँ निर्धारित कर
ग्रामीण क्षेत्र में समाजवाद की नीति लागू करने
का महान प्रयास शुरू हो चुका है।

आर्थिक समृद्धि लाने का दायित्व सब को समान रूप से
लेना है।

विज्ञापन-१ सूचना विभाग उत्तर-प्रदेश द्वारा प्रसारित

ग ७२२६

जो कार्य किये जा रहे हैं (सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण):—

- ट्रस्ट की स्थापना से पूर्व, सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण के अन्य कार्य जो अन्यत्र हो चुके हैं:—

- विज्ञापन के लिए, व्यवस्थापक, 'वाणी सरोवर' १२८, चौपटियाँ
रोड, लखनऊ-३ से पत्र-व्यवहार कीजिए।